बालशौरि रेड्डी
का
औपन्यासिक कृतित्व

डॉ० रवीन्द्र कुमार जैन

साहित्य भवन (प्रा) लिमिटेड
के.पी. कक्कड़ रोड ; इलाहाबाद-२११००३

BALSHAURI REDDY KA AUPANYASIK KRITITVA

By

Dr. Ravindra Kumar Jain

पुस्तकालय संस्करण मूल्य : ३५-००

प्रथम संस्करण : १९९१
© लेखक
विद्यार्थी संस्करण मूल्य : २०-००

साहित्य भवन प्रा० लि०, ९३ के० पी० कक्कड़ रोड, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित तथा
स्टार प्रिण्टर्स, २५७ दरियाबाद, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित

विषय-सूची

□ □

भूमिका

उपन्यास, मूलभूत जीवन मूल्यों की प्राप्ति के लिए निरन्तर संघर्षरत मानव-चरित्र का गद्यात्मक महाकाव्य है। अन्य साहित्यिक विधाओं (काव्य, नाटक आदि) से पर्याप्त परवर्ती (आधुनिक) होने पर भी उपन्यास ने मानव-जगत के बाह्य तथ्य और भीतरी सत्य से गहरी आत्मीयता के कारण अपनी विशिष्ट एवं अपराजेय पहचान बना ली है। काव्य गलदश्रु भावुकता, रौद्र-रंजित उत्तेजना एवं अलंकारों की वन-वीथियों में उलझ जाने के कारण मानव-जीवन की ज्वलन्त एवं मूलभूत समस्या का सीधा साक्षात्कार नहीं कर पाता; वह सीमित हो जाता है; या फिर आदर्श की ओर पलायन कर जाता है। नाटक भी अपनी दृश्यात्मकता के कारण जीवन के अन्तरंग का संस्पर्श एवं साक्षात्कार प्रायः नही कर पाता। उपन्यास आवश्यक भावना, कल्पना और शब्दाश्रित दृश्यविधान ग्रहण करता है और जीवन की जंग और जड़ता के विरुद्ध शोषित एवं संघर्षरत मानव के माध्यम से एक ग़दर का आह्वान करता है। यह आह्वान प्रायः सीधा होता है, पर कभी-कभी परोक्ष भी होता है। परन्तु इसी से उपन्यास की कोटि भी निश्चित होती है।

हिन्दी-उपन्यास अपनी ऐतिहासिकता मे शताधिक वर्ष पुराना है और पाश्चात्य उपन्यास (आंग्ल उपन्यास) दो सौ वर्ष के लगभग पुराना है। इस कालावधि में उपन्यास ने स्थूल उपदेश, तिलस्म, ऐयारी, आदर्शवाद एवं अपराध-मनोविज्ञान आदि की अनेक स्थितियाँ पार की हैं।

आज का हिन्दी-उपन्यास जिस प्रमुख जीवन-बिन्दु पर संघर्ष कर रहा है, वह है निम्न एवं मध्यवर्गीय मानव की बहुमुखी अतृप्ति, दंश, हताशा, यौन जिजीविषा एवं सर्वतोमुखी शोषण के विरुद्ध संघर्ष है।

उत्तर भारत के हिन्दी भाषी स्रष्टाओं ने ही इस दिशा में सन् १९६० के आस-पास तक सहस्राधिक उपन्यासों का सृजन किया, परन्तु साठोत्तर काल मे हिन्दीतर और मुख्य रूप से दक्षिण के, और विशेष रूप से आन्ध्र प्रदेश के स्रष्टाओ ने इस दिशा मे जमकर लिखा है। श्री रमेश चौधरी आरिगपूड़ि और श्री बालशौरि रेड्डी के दो दर्जन उपन्यास इसका ज्वलन्त प्रमाण हैं। इन दोनों लेखकों को उत्तर भारत में प्रायः नही के बराबर जाना जाता है, या फिर यदा-तदा संकेत करके या प्रोत्साहन पुरस्कार देकर किनारा कर दिया जाता है। यह दिवान्धता कहाँ तक श्रेयस्कर है?

यह पुस्तक श्री बालशौरि रेड्डी के गत दो दशकों में रचे गये और प्रकाशित

हुए बारह महत्त्वपूर्ण उपन्यासों पर प्रथम बार सही प्रयत्न है। ये सभी उपन्यास प्रायः सप्तम एवं अष्टम-दशकों में रचे गये हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

क्रम सं०	उपन्यास-नाम	विषय	प्रकाशन वर्ष
१	शबरी	पौराणिक	१९५९
२	जिन्दगी की राह	सामाजिक	१९६२
३	यह बस्ती ये लोग	सामाजिक	१९६३
४	भग्न सीमाएँ	सामाजिक	१९६५
५	बैरिस्टर	सामाजिक	१९६७
६	प्रकाश और परछाईं	ऐतिहासिक	१९६८
७	स्वप्न और सत्य	ऐतिहासिक-सामाजिक	१९६८
८	धरती मेरी माँ	सामाजिक	१९६९
९	लकुमा	ऐतिहासिक	१९६९
१०	प्रोफेसर	सामाजिक	१९७१
११	वीर केसरी	ऐतिहासिक	१९७८
१२	दावानल	ऐतिहासिक	१९७९

श्री बालशौरि रेड्डी सशक्त एवं उर्वर बहुमुखी साहित्यिक प्रतिभा के धनी हैं। वे एक प्रशस्त उपन्यासकार के साथ-साथ कहानीकार, एकांकीकार, समीक्षक, इतिहास-लेखक, सम्पादक एवं अनुवादक भी हैं। उपन्यासों के अलावा उनकी अन्य मौलिक रचनाएँ ये हैं—

१ तेलुगु साहित्य का इतिहास
२ आन्ध्र भारती
३ पंचामृत
४ तेलुगु साहित्य के निर्माता
५ सत्य की खोज (एकांकी संकलन)
६ तेलुगु की लोक कथाएँ
७ तेनाली राम के लतीफे (दो भाग)
८ बुद्धू से बुद्धिमान
९ आन्ध्र के महापुरुष
१० न्याय की कहानियाँ
११ दक्षिण की लोक कथाएँ
१२ आयुक्त मान्यदा

लगभग २० पुस्तकों का आपने तेलुगु से हिन्दी में अनुवाद भी किया है।

श्री रेड्डी को उनके प्रभावक कृतित्व पर अनेक-सरकारों और संस्थाओं से पुरस्कारों द्वारा सम्मानित भी किया गया है।

श्री बालशौरि रेड्डी को सर्वाधिक ख्याति उनके सशक्त मौलिक उपन्यासों के ही कारण प्राप्त हुई है। प्रस्तुत पुस्तक भी उनके औपन्यासिक कृतित्व की समीक्षा के लिए संकलित है। अतः कृति उपन्यासकार के विकास की एक झलक यहाँ अपना सहज महत्त्व रखती है। समग्र मूल्यांकन के लिए भी पाठक को एक आधार प्राप्त हो जाता है।

श्री रेड्डी सामान्यतया हिन्दी के साठोत्तरी उपन्यासकार हैं, परन्तु उनका पहला उपन्यास 'शबरी' सन् १९५९ में प्रकाशित हुआ था। यह भक्ति-भावना से ओत-प्रोत पौराणिक उपन्यास है। शबरी और मर्यादा पुरुषोत्तम-भक्तवत्सल राम के कथानक से हम सब सुपरिचित हैं। उक्त कथानक मे मानस और अध्यात्म रामायण का मूलाधार है, परन्तु उपन्यासकार ने अपनी सहज कल्पना का भी इसमे पर्याप्त उपयोग करके इसे नयी भावभूमि और चेतना प्रदान की है। चमत्कार तत्त्व का भी ३-४ स्थलों पर प्रभावकारी उपयोग किया गया है।

नारी शक्ति, भक्ति, शौर्य, त्याग और एकनिष्ठता के ताने-बाने से यह लघु-कृति बुनी हुई है। जातिवादी भावना की सारहीनता और ऋषियों की लोकोत्तर परख और उदारता का भव्य-निदर्शन किया गया है।

पौराणिक परिवेश में देखने पर इस कृति की कल्पना, चमत्कार एवं अतिरंजना भी जीवन-धारा का अंग सी बन जाती हैं।

'ज़िन्दगी की राह' श्री रेड्डी का १९६२ में रचित दूसरा उपन्यास है। यह मध्यवर्गीय हिन्दू समाज की वैवाहिक समस्या पर आधारित है। प्रेम विवाह और निर्धारित विवाहों के वात्याचक्र को लेखक ने उसकी सम्पूर्णता मे उभारा है। मानव अपने ढंग से जीना चाहता है, अपना जीवन-साथी चुनना चाहता है, परन्तु अन्ततः उसे नियति के हाथ की कठपुतली बनना ही पड़ता है। उपन्यासकार ने इस कृति के विषय में उचित ही कहा है, "इस उपन्यास मे वर्णित कतिपय घटनाएँ यथार्थ का स्पर्श करते हुए भी उसकी छायामात्र कही जा सकती है। कल्पना का आश्रय तो प्रत्येक लेखक को लेना ही पड़ता है। बस घटनाएँ अस्वाभाविक न हों। ""पात्रों का निर्माण करते समय मेरा ध्यान इस ओर अवश्य रहा है कि वे वस्तु और वातावरण के अनुरूप तथा सच्चे रूप में समाज के सामने आएँ। इसलिए जहाँ खूबियाँ दिखाई गईं, वहाँ दुर्बलताएँ भी। अपने पात्रों को आदर्शमय बनाना अथवा नग्न रूप मे उपस्थित करना मेरा अभिमत कभी नहीं रहा है।"

उपन्यास के समस्त पात्रों और घटनाओं में केन्द्रीभूत चरित्र सरला का है। वह आदि से अन्त तक अपने जीवन मूल्यों के लिए संघर्षरत रहती है। जब उसके

जीवन के सभी द्वार बन्द हो जाते हैं, तो वह मरण भी स्वीकार करती है। उसका प्रेमी ईमानदार होते हुए भी ईमानदार सिद्ध न हो सका।

उपन्यास का नायक सुरेश एक मध्यवर्गीय युवक है जो विवशता में समझौता या समर्पण का जीवन बिताता है। वह दुर्दान्त संघर्ष के साथ नहीं जीता। सुरेश प्रेमी, भीरु और ईमानदार है। उसमें एक मध्य वर्गीय युवक का संस्कारी दब्बूपन भरपूर है। अपने-अपने ढंग से सरला और सुरेश इस दुनिया से विदा हुए। सुरेश का भीतरी नैतिक पक्ष बहुत साफ है; सरला का भी; परन्तु दोनों नियत के शिकार हैं।

सरला की बड़ी बहिन सुहासिनी में आदर्श और यथार्थ का सुन्दर समन्वय है। वह जीवन भर अपने माता-पिता एवं बहिन की गौरव रक्षा एवं सुरक्षा के लिए जीती रही। स्वयं के लिए भी अन्ततः उसने एक भद्र पुरुष को अपने लिए चुना और एक सुशिक्षित अभद्र को त्यागा।

मनुष्य परिस्थितियों का दास भी है और निर्माता भी। यह उसकी योग्यता पर निर्भर करता है कि वह विपरीत परिस्थितियों में क्या कर पाता है। आम आदमी परिस्थितियों की अनुकूलता में ही विकसित होता है। अतः परिस्थिति का समुचित निर्माण वांछनीय है।

"यह बस्ती ये लोग" श्री रेड्डी का सन् १९६३ में रचित तीसरा उपन्यास है। यह मद्रास नगर के माध्यम से हमारे भ्रष्ट सामाजिक जीवन के विविध रूपों को प्रस्तुत करने वाला सामाजिक उपन्यास है। यह कृति १९६१ में 'जीवन सूत्रम्' शीर्षक से तेलुगु भाषा में प्रकाशित हुई थी। प्रस्तुत कृति रूपान्तरण होते हुए भी घटनाक्रम, शिल्प एवं वातावरण की सृष्टिगत मौलिकता के कारण मौलिक रचना की कोटि में आती है। "यह बस्ती ये लोग" अपेक्षाकृत एक छोटी रचना है, पर शहरी जीवन पर यह एक बड़ा व्यंग्य है। हमारे महानगरों की बाह्य प्रगति और जीवन की तेज रफ्तार अपने भीतर कितनी बहुमुखी क्षुद्रता भरे हुए हैं, इसी तथ्य को यह कृति प्रस्तुत करती है। इस उपन्यास का कथानक ३२ लघु खण्डों में विभाजित है। सम्पूर्ण कथानक में मद्रास महानगर के अनेक जीवन अंचल प्रस्तुत हैं। इसमें बीस से अधिक पात्र हैं और वे सभी परिस्थितियों के हाथ के खिलौने हैं। गोविन्द और सरोजा इस कृति के आधारभूत एवं प्राणभूत पात्र हैं। इन दोनों के माध्यम से ही मद्रास महानगर की बहुमुखी विद्रूपता उद्घाटित होती है। यह कृति मूलतः सिनेमा के निमित्त लिखी गयी थी अतः इसमें चमत्कार, आकस्मिकता और मनोरंजन जैसे सिने-तत्त्व भी हैं।

"भग्न सीमाएँ" श्री रेड्डी का सन् १९६५ में रचित चौथा उपन्यास है। यह मध्यवर्गीय हिन्दू परिवार की प्रेम एवं विवाह-समस्या के ताने-बाने से बुना गया है। परम्परा और आधुनिक युवा-निर्णय का संघर्ष इसके मूल में है। त्याग, कर्त्तव्य और प्रेम त्रित के निर्वाह में जीवन ही बीत गया, परन्तु किसी ध्रुव पक्ष का संधान डाक्टर

राजेन्द्र न कर पाया। डा० राजेन्द्र ने यही अन्ततः अनुभव किया कि जीवन का दूसरा नाम ही दुःखों की कहानी है।

डा० राजेन्द्र, शीला और वसन्ता अपनी-अपनी संश्लिष्ट मानसिकता में जीते हैं और टूटते हैं।

परिवार और व्यक्तिगत रुचि के संघर्ष में राजेन्द्र पिस जाता है और कह उठता है—"मेरे हृदय और मस्तिष्क की सीमाएँ भग्न हो चुकी हैं।" जातिवाद, निर्धारित विवाह एवं दहेज आदि के स्तर पर भी यह उपन्यास जीवन्त सिद्ध होता है।

शीला इस उपन्यास की नायिका है। यह कृति वस्तुतः नायिका प्रधान है, परन्तु नायकत्व राजेन्द्र को प्राप्त है। शीला में त्याग और कर्तव्य पालन की दिव्य शक्ति है। वह व्यक्तिगत इच्छा की अपेक्षा दूसरे के भावी जीवन पर अधिक सोचती है।

जन्म से मृत्यु पर्यन्त शीला जीवनमूल्यों के लिए संघर्ष करती रही। उसे अपने माता-पिता का पता नहीं, वह तो बाल्यावस्था से ही एक पेशेवर वेश्या परिवार में पालित हुई। उसने सदा अन्याय और व्यभिचार का डटकर विरोध किया। अपने जीवन को नयी भूमि दी। वह कलाओं और मानवीय गुणों से भरपूर थी। अन्ततः उसे इस दुनिया से विदा होना पड़ा।

वसन्ता का खालीपन कभी भरा नहीं। वह सुशिक्षित, योग्य, सुन्दर एवं स्वाभिमानिनी थी। घोर रिक्तता में भी वह जीवन को नयी गति और शक्ति देती रही।

विसंगति और जीवन की अपूर्णता के तेज तेवर इस कृति में आस्फालित हैं।

"बैरिस्टर" श्री रेड्डी का पाँचवाँ और सामाजिक उपन्यास है। यह सन् १९६७ में प्रकाशित हुआ था। "इस सामाजिक उपन्यास में मानव मन के संस्कारों और सहज इच्छाओं के संघर्ष को मूर्त रूप दिया गया है" बेमेल विवाह, बहुविवाह और झूठी सभ्यता के दुष्परिणाम इस कृति में अत्यन्त प्रभावक ढंग से चित्रित है। भारतीय नारी की गरिमा, सादगी, कर्तव्यपालन और सहनशीलता का भव्य चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।

बैरिस्टर होकर सुधाकर दूसरों को न्याय दिलाने में अत्यन्त निपुण थे, परन्तु दीपक तले अंधेरे की भाँति वे अपनी सुयोग्य पत्नी की प्रायः उपेक्षा करते रहे, वासना और आडम्बर के शिकार बनते रहे।

अनसूया भारतीय आदर्श पत्नी का प्रतिनिधित्व करती है। श्री रेड्डी के अधिकांश नारी पात्र एक निजी दीप्ति लेकर आते हैं। सभी उपन्यासों में ऐसा हुआ है। बैरिस्टर-उपन्यास अन्ततः विसंगति में संगति एवं विरोध में मैत्री की कृति है।

यह एक चरित्र प्रधान मौलिक उपन्यास है। लेखक को कथानक-निर्माण एवं चरित्र-गठन मे पर्याप्त सफलता मिली है। चरित्र पाठक को झकझोरते हैं और तादात्म्य कराते हैं।

इस प्रकार श्री वालशौरि रेड्डी के औपन्यासिक कृतित्व में उत्तरोत्तर भारतीय मानव समाज के विविध रूप पर्याप्त विश्वसनीयता से उभरते रहे हैं। उनके कथानक और शिल्प में भी पैनापन और निखार आता गया है।

इसके बाद वे भारतीय इतिहास की ओर उन्मुख हुए हैं। इसमें भी आन्ध्र प्रदेश का मध्यकाल अधिक प्रिय रहा है। श्री रेड्डी के बारह में से पाँच उपन्यास ऐतिहासिक हैं।

"प्रकाश और परछाईं" श्री रेड्डी का पहला ऐतिहासिक उपन्यास है। यह आन्ध्र प्रदेश की मध्ययुगीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित लघु उपन्यास है। आन्ध्र प्रदेश के इतिहास मे महाराजा कृष्णदेव राय का समय स्वर्ण युग के रूप में विख्यात है। इस युग में राजनैतिक प्रभुत्व के अतिरिक्त कला, साहित्य एवं नैतिक मूल्यों का भी पर्याप्त विकास हुआ। इस महान् साम्राज्य के सूत्र-संचालक महामंत्री तिम्मरुसु थे। भारतीय इतिहास में चाणक्य की समता कर सकने वाला यही नाम है।

वस्तुतः यह उपन्यास एक आन्ध्र प्रदेशीय ग्रामीण बालक के उज्ज्वल जीवन की यशोगाथा है। एक अति साधारण परिस्थितियों मे उत्पन्न ग्रामीण बालक किस प्रकार घोर विपरीत एवं दुर्धर्ष हालात मे अदम्य, उत्साह और परिश्रम से अपना विकास करता है, यह तथ्य चरितार्थ हुआ है, इस उपन्यास मे। परन्तु, ऐसे महान् व्यक्ति का अन्त अत्यन्त करुण हुआ। क्यों और कैसे, इसके लिये उपन्यास पढना अनिवार्य है। सुकरात, अब्राहम लिंकन और महात्मा गांधी की याद ताजा हो उठती है ऐसे प्रसग पर।

"धरती मेरी माँ" सन् १९६९ मे रचित वसुधैव कुटुम्बकम् की अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक चेतना का प्रशस्त उपन्यास है। यह श्री रेड्डी का आठवाँ उपन्यास है। विश्व चेतना इसका प्राण है।

भू, जन और सस्कृति की विराटता और समन्वय के माध्यम से इस कृति की अन्तरात्मा से तादात्म्य किया जा सकता है। बाह्य अनेकता मे आन्तरिक एकता इस कृति की प्रमुख विशेषता है। कर्तव्य और प्रेम में भव्य मैत्री भी इस कृति की एक विशिष्ट छवि है।

हरिचरण और मेरी तथा रूपनारायण और सोनी—ये दो जोड़े इस उपन्यास में आद्यन्त प्राणों का संचार करते हैं और जीवन को जाति, भूमि और धर्म आदि की सकीर्णता से दूर एक विश्वात्म धरातल को सहजता में प्रस्तुत करते हैं। मूलतः भारत

की भू-सम्पदा के वैज्ञानिक अन्वेषण से आरम्भ होकर यह कृति जीवन के रागात्मक पक्ष से जुड़कर अधिक मनोहर हो जाती है।

"लकुमा" श्री रेड्डी का १९६९ में रचित नवम उपन्यास है। यह इतिहास, रोमांस और ललित कलाओं के समन्वयात्मक ताने-बाने से बुना गया है। यह उपन्यास मूलतः आन्ध्र प्रदेश के, १३वीं शती के राजा कुमारगिरि रेड्डी के वैभवपूर्ण एवं घटना संकुल समय के इतिहास को कल्पना-कलित कमनीयता के साथ प्रस्तुत करता है। 'लकुमा' इस उपन्यास की नायिका है। वह अपनी नृत्यकलागत लोकोत्तर निपुणता और अनिन्द्य सौन्दर्य के आधार पर राजा कुमारगिरि की राजनर्तकी, फिर प्राण-प्रिया और फिर नृत्यकला शास्त्र का मूलाधार बनती है। लकुमा में शालीनता, स्वाभिमान एवं निःस्वार्थता कूट-कूट कर भरी हुई है। राजा कुमारगिरि लकुमा के गुणों से मोहित होकर राजकाज के प्रति उदासीन हो जाते हैं।

लकुमा में वे अपने नृत्यकला शास्त्र की आधारभूत प्रचुर नूतन सामग्री प्राप्त करते हैं। यही लकुमा जब यह अनुभव करती है कि उसके कारण कुमारगिरि अपनी प्रजा के प्रति अपना उत्तरदायित्व भूल गये हैं और उनकी पत्नी भी उपेक्षिता सी हो गई है, उसी क्षण रानी भी लकुमा को उक्त समस्या से अवगत कराती हैं और उनके रास्ते से तुरन्त हट जाने का स्पष्ट विचार प्रकट करती हैं। ऐसी स्थिति मे लकुमा भरी नृत्य सभा में कटार मारकर आत्महत्या कर लेती है और अपनी महानता की अटल छाप छोड़ जाती है। इस उत्कृष्ट कृति को पढकर पाठक मे 'चित्रलेखा', 'मृगनयनी' और 'वैशाली की नगरवधू' की स्मृति प्रोज्ज्वल हो उठती है।

लकुमा मूलतः देवदासी थी, अतः उसमे एक नैतिक शालीनता तो जन्मजात थी ही। वह कभी किसी सांसारिक प्रलोभन से आकृष्ट नही थी। राजा कुमारगिरि के प्रति भी उसके मन में विशुद्ध प्रेम ही था।

उत्कृष्ट एवं अमर शिल्पी सोम देव का चरित्र भी इस कृति की अनुपम विशेषता है। परन्तु उसका भी दुःखद अन्त हुआ।

"प्रोफेसर" श्री रेड्डी का १९७१ में रचित एक महत्वपूर्ण सामाजिक उपन्यास है। क्रमानुसार यह उनका दसवां उपन्यास है। यह उच्च मध्यवर्गीय समाज के [illegible] एवं प्रबुद्ध व्यक्तियों के जीवन की आकांक्षाओं-ग्रन्थियो से सम्बन्धित कृति है। इसमें पात्रों के तीन दल हैं। एक-प्रौढ़ो का, दूसरा युवको का और तीसरा महिलाओं का दल अलग-अलग जीवन-मूल्यों से उलझते-सुलझते जीवन बिताते हैं।

उच्च शिक्षा और शोधोपाधि प्राप्त कर और विश्वविद्यालय में प्राध्यापक एवं रीडर बनकर भी निरन्तर सहकर्मियों की उखाड़-पछाड़ और [illegible] की महत्वाकांक्षा में जीने वाले व्यक्ति देश और समाज को क्या दे सकते हैं? वे लोग घर और दोनों से उखड़ जाते हैं तो दूसरी ओर भौतिक धन में अति व्यस्त लोग परिवार को ही भूल जाते है तो कहीं आर्थिक शोषण होता है।

कभी-कभी शिक्षित किन्तु अहंकारिणी, महत्वाकांक्षिणी एवं वितृष्णा से ग्रसित पत्नी के कारण भी विद्वानों का जीवन संकटों का सामना करता है। सुधा इसका उदाहरण है।

जहाँ तक उपन्यास के उद्देश्य की बात है, वह दो सुशिक्षित जोड़ों की जीवन-दृष्टि में निहित है। प्रोफेसर उमापति और उनकी साध्वी पत्नी की जीवन-दृष्टि मे और रीडर आनन्द और सुधा की जीवन-दृष्टि मे कितना पार्थक्य है, यह ध्यातव्य है। दो शिक्षित पीढ़ियों की जीवन-दृष्टि में जो अन्तर है, उसे बहुत ही स्पष्ट एवं कलात्मक शैली मे व्यक्त किया गया है।

''वीरकेसरी'' श्री बालशौरि रेड्डी का सन् १९७८ मे प्रकाशित ग्यारहवाँ और ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमे आन्ध्र प्रदेश के विजयनगर साम्राज्य, तंजौर राज्य एवं मदुरा राज्य (तमिलनाडु) के शौर्यपूर्ण संघर्ष,और युद्ध का रोमांचकारी इतिहास अत्यन्त कलात्मक स्तर पर प्रकट किया गया है। यह १४वीं शती का वृत्त है। इतिहास और कल्पना का आनुपातिक मेल कृति को पर्याप्त महत्त्वपूर्ण बना देता है। विजय नगर साम्राज्य की न्यायशीलता और शक्ति का आस्फालन इस रचना का लक्ष्य है। कर्तव्य और पितृभक्ति का संघर्ष इस उपन्यास की रीढ है। अन्ततः समन्वय मे यह उपन्यास विराम लेता है।

विश्वनाथ और गौरी के चरित्र-चित्रण मे श्री रेड्डी ने कमाल कर दिया है। पाठक उपन्यास पढकर इस भव्य सचाई का साक्षात्‌वत आनन्द ले सकते हैं। <

''दावानल'' अत्यन्त सशक्त ऐतिहासिक उपन्यास है। यह श्री रेड्डी का बारहवाँ और अब तक का अन्तिम उपन्यास है। सन् १९७९ में इसकी रचना हुई। यह उपन्यास आन्ध्र प्रदेश के पलनाडु महायुद्ध से सम्बन्धित उपन्यास है। इसकी तुलना 'महाभारत' से की जाती है और घटनाओं तथा पात्रों मे अनेक समानताएँ भी देखी जाती हैं।

''पलनाडु के इस युद्ध ने आन्ध्र के कवियों, नाटककारों, लेखकों एवं इतिहासकारों पर ऐसा प्रभाव डाला कि इसे इतिवृत्त बनाकर दर्जनों काव्य, नाटक, उपन्यास, वीरगीत, गद्यकाव्य, गीतिकाव्य तथा फिल्में भी बनाई गयीं। आज से ३०० वर्ष पूर्व कवि सार्वभौम श्रीनाथ ने द्विपद छन्द में महाकाव्य का रूप दिया था। ई० सन् १८६२ मे वीरभद्र कवि ने 'वीर भागवत' नाम से महाकाव्य ही प्रस्तुत किया।''

इन बारह उपन्यासों के माध्यम मे हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि श्री बालशौरि रेड्डी एक सिद्धहस्त एवं पांक्तेय उपन्यासकार हैं। उनके इस कृतित्व के बिना हिन्दी के साठोत्तर उपन्यासों का अध्ययन विकलांग एवं अपूर्ण ही माना जाएगा। यही बात श्री आरिगपूडि रमेश चौधरी के उपन्यासों के विषय में लागू होती है।

१-१-१९९०

—रवीन्द्र कुमार जैन

शबरी

श्री बालशौरि रेड्डी मूलतः तेलुगुभाषी हैं। उनका तेलुगु और हिन्दी भाषाओं पर समान अधिकार है। दोनों ही भाषाओं में उनके अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु उन्हें विशेष रूप से हिन्दी के एक सशक्त उपन्यासकार के रूप में अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। अनेक साहित्यिक सम्मानों से वे विभूषित हुए हैं। वे गत तीस वर्षों से हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं। उनका पहला उपन्यास 'शबरी' है। यह उपन्यास सन् १९५९ में, शिक्षा भारती दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। यह उपन्यास रामायण-कालीन पृष्ठभूमि पर आधारित १४४ पृष्ठों और ३८ लघु परिच्छेदों में व्याप्त है।

इस उपन्यास में पुराण, जनश्रुति और कल्पना का प्रयोग लेखक ने किया है। यह एक नारी चरित्र प्रधान उपन्यास है, यद्यपि इसमें अनेक नर चरित्र भी हैं। इस कृति की नायिका शबरी है।

कथानक के विषय में लेखक (उपन्यासकार) का कथन है, "विन्ध्याचल से लेकर दक्षिण में ऋष्यमूक पर्वत तक भयंकर जंगल था। आन्ध्र प्रदेश में गोदावरी की अधित्यकाओं और उपत्यकाओं में अनेक भिल्ल एवं शबर जातियाँ निवास करती थीं, वहीं जंगल के मध्य एक विशाल सरोवर था। भगवान विष्णु ने रामावतार लेकर अपने चरण स्पर्श से इस भूमि को पुनीत किया। उनकी चरणधूलि से यहाँ के पाषाण भी प्राणवान् हो उठे। रामायण काल से एक अत्यन्त पवित्र नदी 'शबरी' नाम से प्रवाहित होती आ रही है जो कि भगवान रामचन्द्र जी की अनन्य आराधिका शबरी का स्मृति-चिह्न बनी हुई है। शबरी ने रामचन्द्र जी के चरण कमलों की दर्शनाभिलाषा से, उनका ध्यान करते हुए अपना सारा जीवन यहीं पर व्यतीत किया था।"

दण्डकारण्य में शबर-नायक के घर पुत्री ने जन्म लिया। पुत्री अनेक शुभ लक्षणों से युक्त थी। अतः उसका नाम शबरी रखा। शबरी धीरे-धीरे बाल्यावस्था को पार कर किशोरी हो गयी। शबरी में शक्ति, शील और सौन्दर्य का अद्भुत समन्वय था। वह निर्भय और दयालु थी। उसकी जाति के लोग पेशे से लुटेरे, शिकारी और मांसाहारी थे। अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में उसके चरित्र का विकास हुआ। शबरी को उसके पिता ने उसकी शक्ति और योग्यता के आधार पर शबर जाति का नायक बनाया। पुरुष वर्ग को यह बात अखर गयी। शबरी की माता का तो बचपन में ही देहान्त हो गया था, उसके पिता का भी उसके जवान होते-होते देहान्त हो गया। शबरी ने विवाह नहीं किया।

धीरे-धीरे शबरी ने अपनी शबर जाति को सत्कर्म की ओर मोड़ना चाहा, पर

उसका घोर विरोध हुआ और उस इलाके से भागना पड़ा। इस बीच अनेक घटनाओं में शबरी के शौर्य, साहस, सदाचार और त्याग का उत्तम परिचय मिला।

किसी प्रकार वह महर्षि मातंग के आश्रम में पहुँच गयी। महर्षि ने शबरी में अद्भुत भक्ति, सरलता, निष्ठा और निस्वार्थता को चरम पर देखा और अपने आश्रम मे उसका स्वागत किया। यहाँ भी आश्रम वासियों ने शबरी का घोर विरोध किया। अन्ततः शबरी ने अपनी पर्णकुटी स्वयं बनायी। वह प्रभुभक्ति में लीन रहने लगी।

शबरी के सौन्दर्य और आकर्षक यौवन पर कई शबर एवं बाद में कई अन्य युवक मुग्ध हो चुके थे। इससे उसने गहरी व्यथा और बाधा का अनुभव किया था। अतः उसने मतंग ऋषि से प्रार्थनापूर्वक स्वयं के लिए वार्धक्य मांगा था और पाया था।

अन्ततः उसकी अभिलाषा पूरी हुई। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी वहाँ आये और शबरी की भक्ति-भावना और त्याग-वृत्ति की सराहना की। शबरी को पुनः यौवन प्रदान किया, पर अन्ततः वह स्वेच्छा से देवलोक मे चली गयी।

प्रस्तुत उपन्यास मूलतः चरित्र प्रधान कृति है। अनेक घटनाओं के माध्यम से शबरी के शौर्य, शील, भक्ति, सामाजिकता, विनय एवं निर्भयता आदि गुणों को उजागर किया गया है। व्यक्ति-मन के धरातल पर भी यह कृति अपना पांक्तेय महत्व रखती है। भाषा सर्वत्र प्रांजल एवं सशक्त है। वातावरण विषय और पात्रों में सजीवता की सृष्टि करता है। कृति का आधार पौराणिक एवं प्रागैतिहासिक होने पर भी, वह कथा एवं चरित्रों के आधार पर अत्यन्त सहज, ग्राह्य एवं विश्वसनीय लगती है। विश्वसनीयता और सहजता की सृष्टि लेखक की अद्भुत सफलता का ज्वलन्त प्रमाण है।

उपन्यासकार ने अनेक घटनाओं, चरित्रों एवं स्थलो की निर्मिति में निज कल्पना-शक्ति का भी रचनात्मक उपयोग किया है।

हनुमान जी का शबरी से प्रभावित होना, जातिवाद का खंडन, शबरी के स्नान से सरोवर का रक्तमय एवं मलिन जल का निर्मल होना, फूटा घड़ा जुड़ जाना और मतंगमुनि के मार्ग मे कमल बिछ जाना आदि प्रसंग उपन्यासकार की कल्पना-शक्ति के परिणाम हैं। कृति की भाषा एवं शबरी के भामंडल-चरित्र को समझने के लिये नमूने के रूप मे कतिपय उद्धरण प्रस्तुत हैं—

१. 'सुख-दुख के सुन्दर समन्वय में ही मानव जीवन मधुरतम हो उठता है। मनुष्य अपने सुख का अनुभव आप ही करता है और दुःख को लोगों मे बाँटता फिरता है। इस दुर्बलता के कारण ही वह वास्तविक जीवन के मर्म को पहिचान नही पाता।' पृ० ९।

२. शबरी मातृहीन हो गई। पृ० ११।

३. वास्तव में वस्तु का बड़प्पन उसके गुण ■ और उसकी पवित्रता से प्रकट होता है। परिणाम अथवा स्थान विशेष को दृष्टि में रखकर उसका महत्त्व जाना नहीं जा सकता। पृ० १२।

४. शबरी ने लोगों की तरफ मुड़कर कहा, आप लोग जिस व्यक्ति को अपना उपयुक्त नायक समझते हों, उसी को चुन सकते हैं। नायक के चुनाव में किसी भी प्रकार की जोर-जबर्दस्ती नहीं होनी चाहिए""।

५. गुरुदेव! इस यौवन के प्राप्त होने के कारण ही मुझे यह दिन देखना पड़ा है। इसलिए मुझे वृद्धा और कुरूपिणी बना दे। पृ० १११।

अपनी पौराणिक और काल्पनिकता के बावजूद यह उपन्यास अपने सहज चैतन्य के कारण अत्यन्त प्रभावक सिद्ध हुआ है। नारी जाति के लिए तो इसमें अद्‌भुत प्रेरणा निहित है।

'शबरी' उपन्यास के कथावृत्त मे कल्पनाशक्ति और अतिप्राकृतिक एवं पारलौकिक चमत्कारों का भी उपयोग किया गया है। इस सबके कारण वास्तविकता के धरातल से हटकर उपन्यास चमत्कारों की दुनिया में चला गया है। यह बात सच है कि शबरी के चरित्र की महानता प्रकट एवं स्पष्ट करने के लिए ही लेखक ने यह किया है, परन्तु कथानक की विश्वसनीयता इससे अवश्य ही भंग हुई है। ऐसे प्रसंगों में कबन्ध का प्रसंग, फूटा घड़ा जुड़ जाने का प्रसंग, अपार फल एवं शाखाएँ ऊपर से हनुमान जी द्वारा गिराये जाने पर शबरी को कोई फल छू भी न सका, शबरी के रक्त से सरोवर का रक्तमय हो जाना, शबरी के स्नान से सम्पूर्ण मलिन सरोवर का जल स्वच्छ हो जाना, हनुमानजी को तारक मन्त्र एवं रामभक्ति में शबरी द्वारा दीक्षित किया जाना आदि प्रसंग ऐसे ही हैं। शबरी का चिता में जलकर पुनः युवती हो जाना भी एक लोकोत्तर-चमत्कार ही है। तारकमंत्र भी अपना चमत्कार दिखाता ही रहता है। नमूने के रूप में हनुमान जी का प्रसंग इस प्रकार है—

"हनुमान बड़े अभिमान के साथ इधर-उधर टहल रहे हैं। इतने में तारक नाम के उच्चारण की मधुर ध्वनि उसे सुनाई देती है। वे धीरे-धीरे उस दिशा की ओर आगे बढ़ते हुए चलते हैं। कुछ समय के उपरान्त वे एक आश्रम के सामने पहुँच जाते हैं। वहाँ एक वृक्ष के नीचे शबरी ध्यान मग्न बैठी है और तारक मन्त्र का जाप कर रही है। हनुमान उसका ध्यान भंग करने की कई प्रकार से चेष्टा करते हैं, लेकिन शबरी अपनी ध्यानावस्था से विचलित नहीं होती। आखिर वे ऊबकर उस वृक्ष पर चढ़ जाते हैं। वृक्ष की शाखाओं को पकड़कर जोर से हिला देते हैं, फल तोड़ते हैं और अपने हाथ में लेकर शबरी के ऊपर गिरा देते हैं लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि शबरी पर एक भी फल नहीं गिरता। आखिर वे एक ऐसी शाखा को तोड़कर शबरी के ऊपर गिरा देते है जिसमें दर्जनों पके फल लगे थे। पर वे फल शबरी का स्पर्श किये बिना उछलकर चारो तरफ गिर जाते हैं""

शबरी को खड़ा देख हनुमान बहुत खुश होते हैं। शबरी रामचन्द्र जी के विशिष्ट गुणों का परिचय कराती है। हनुमान अनायास ही रामचन्द्र जी के प्रति आकर्षित हो जाते हैं। शबरी तारक मंत्र का उपदेश देती है।' पृ० १२२।

एक और प्रसंग—मुनि वाटिका के समीप स्थित तड़ाग में शबरी स्नान करती है। उसके स्नान के समाप्त होते ही तड़ाग का सारा जल निर्मल हो जाता है।'' पृ० १४२।

निष्कर्षतः यह ध्यान देने की बात है कि ऐसे उपन्यासों में चरित्र की महानता स्थापित करने के निमित्त अलौकिक घटनाओं एवं अतिशयों का आयोजन किया जाता है, यद्यपि यह वस्तुगत एवं विश्वसनीय यथार्थ की परिधि में नहीं आता है। यह उपन्यास अपनी कतिपय सीमाओं के बावजूद एक सफल कृति है।

अनेक रामायणों में प्राप्त शबरी के प्रसंग को श्री बालशौरि रेड्डी ने अपनी सहज एवं विश्वसनीय सृजनात्मक कल्पना शक्ति के द्वारा सहजग्राह्य एवं वरेण्य बना दिया है। पुरातन और नूतन का सुन्दर समन्वय इस कृति की निजी विशेषता है।

उद्देश्य वही श्रेष्ठ माना जाता है जो उपदेशात्मक न हो, अपितु कृति के पात्रों और घटनाओं का सहज परिणाम हो, अभिधात्मक न होकर व्यंजनात्मक हो। 'शबरी' उपन्यास इस कसौटी पर खरा उतरा है। अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में एक साधारण नारी का इस प्रकार, केवल अपनी अदम्य आकांक्षा के बल पर, सर्वतोमुखी विकास कर पाना सामान्यतया असंभव ही है। शबरी के विषय में यह श्लोक अत्यन्त सटीक लगता है—

"उद्यमेन हि सिद्धयन्ति, कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥"



जिन्दगी की राह

श्री बालशौरि रेड्डी का सन् १९६२ में रचित दूसरा उपन्यास है। अपने प्रथम उपन्यास 'शबरी' में श्री रेड्डी पौराणिक आधार लेकर प्रस्तुत हुए थे, परन्तु वह उपन्यास भी अनेक ज्वलन्त सामाजिक समस्याओं से जूझता रहा है। "जिन्दगी की राह" मूलतः मध्यवर्गीय भारतीय हिन्दू समाज की वैवाहिक समस्या पर आधारित है। प्रेम विवाह और निर्धारित विवाहों के वात्याचक्र को लेखक ने उसकी सम्पूर्णता में उभारा है। सहज प्रेम, विवशता में परिणय और नियति का भयंकर प्रहार अनेक परिवारों को एक साथ चकनाचूर कर देता है। मानव तरंगजीवी है। प्रयत्न जीवनी है, पर अन्ततः उसे नियति के हाथ की कठपुतली बनना ही पड़ता है। लेखक ने उपन्यास के विषय में उचित ही कहा है, "इस उपन्यास में वर्णित कतिपय घटनाएँ यथार्थ का स्पर्श करते हुए भी उसकी छायामात्र कही जा सकती हैं। कल्पना का आश्रय तो प्रत्येक लेखक को लेना ही पड़ता है। बस घटनाएँ अस्वाभाविक न हों। इसमें वर्णित घटनाएँ नित्यप्रति हम अपने समाज में घटित होते देखा करते हैं। पात्रों का निर्माण करते समय मेरा ध्यान इस ओर अवश्य रहा है कि वे वस्तु और वातावरण के अनुरूप तथा सच्चे रूप में समाज के सामने आएं। इसलिए जहाँ खूबियाँ दिखाई गईं, वहाँ दुर्बलताएँ भी। अपने पात्रों को आदर्शमय बनाना अथवा नग्न रूप में उपस्थित करना मेरा अभिमत कभी नहीं रहा है।" भूमिका।

प्रस्तुत उपन्यास की कथा मूलतः आन्ध्रप्रदेश के नगर विजयवाड़ा के एक मध्यवर्गीय परिवार की व्यथा-कथा है। यह कथा अपने विस्तार में तीन-चार परिवारों को लपेट लेती है। सोमनाथ का सुसम्पन्न परिवार था। पत्नी, दो पुत्रियाँ, नौकर-चाकर और रिश्तेदारों से घर सदा भरा रहता था। प्रसव पीड़ा से पत्नी का देहान्त हो गया। इससे सोमनाथ पर तो वज्रपात ही हुआ। बेटियाँ भी असहाय हो गयीं। केन्द्रीय सरकार के निमन्त्रण पर रूस से लौटते समय सोमनाथ का भी दुर्घटना-वश देहान्त हो गया। दोनों जवान बेटियाँ पूर्णतया अनाथ हो गयीं। शंकरन नायर अत्यन्त ईमानदार नौकर था। उसने इस परिवार को भरपूर साथ दिया। छोटी बहिन सरला मद्रास मेडिकल कालेज में दाखिल हो गई और बड़ी बहिन सुहासिनी घर का काम और प्रबन्ध देखने लगी। सरला का मेडिकल कालेज में एक सुरेश नाम के युवक से प्रेम हो गया। सुहासिनी घरेलू कामकाज में बेहद उलझ गयी। उसका विवाह परिस्थितिबद्ध एक साधारण रिश्तेदार राजाराम से हो गया। सरला का प्रेम गर्भाधान में बदल गया। सुरेश चाहकर भी शादी न कर सका। उसे माता-पिता के गहरे दबाव में आकर एक अवांछित लड़की से शादी के लिए तैयार होना पड़ा।

उसने माता-पिता को अपना प्रेम सम्बन्ध बता दिया था, पर व्यर्थ। सुरेश की विवाह से पूर्व ही रेल दुर्घटना में मृत्यु हो गयी। उधर सरला ने भी निराश होकर आत्महत्या कर ली। इस कृति की यही सारभूत कथा है। कथावस्तु व्यवस्थित, सम्वादमय औत्सुक्यमय गतिशील एवं प्रभावक है।

पात्र एवं चरित्र-चित्रण के स्तर पर भी यह उपन्यास एक स्तरीय उपन्यास सिद्ध होता है। यद्यपि सभी पात्र अन्ततः परिस्थिति एवं भाग्य के शिकार होते हैं, परन्तु उनका व्यक्तित्व अत्यन्त संघर्षशील एवं दीप्त है। सरला, सुरेश एवं सोमनाथ का मरण भी एक सशक्त चैतन्य लिए हुए है। ये पात्र प्रत्येक पाठक पर अपनी दिव्याभा छोड़ जाते हैं। वस्तुतः ये मध्यवर्गीय पात्र हैं जो विवशताओं में जीते-मरते हैं, पर अपने अपराजेय व्यक्तित्व का शंखनाद भी करते हैं। पात्रों के व्यक्तित्व के सन्दर्भ में एक दो उद्धरण देना न्याय संगत होगा। सोमनाथ का अस्तित्व उपन्यास में अत्यल्प है, परन्तु बहुत महत्त्वपूर्ण है। देखिए—"अपने कर्तव्य के पालन में वज्र की भाँति कठोर दिखाई देने वाले सोमनाथ का दिल एकान्त में मोम की भाँति पिघलने लगा। अपनी पत्नी के स्मरण-मात्र से उनकी आँखें सजल हो उठीं।" पृ० ७।

उपन्यास के समस्त पात्रों और घटनाओं में केन्द्रीभूत चरित्र सरला का है। वह आदि से अन्त तक सक्रिय, संघर्षशील एवं जीवन मूल्यों से जूझने वाली तेजस्विनी नारी के रूप में विद्यमान रहती है। वह एक व्यक्तित्व और मानदण्ड के साथ जीता है और जब उसके जीवन के सभी द्वार बन्द हो जाते हैं तो मरण भी स्वीकार करती है। वह सुरेश, सुहासिनी एवं अन्य सबसे निर्भीक बात करती है। उसके प्रेम ने उसके विश्वास ने धोखा खाया है अतः वह व्यथित है, पर एक दुर्दान्तता के साथ। उसका प्रेमी ईमानदार होते हुए भी ईमानदार सिद्ध न हो सका। वह मंगल-सूत्र से प्रेम-सूत्र को अधिक महत्त्व देती है, पर नियति ने उसका साथ न दिया। लेखक ने सरला के माध्यम से भारतीय युवती जीवन का लोमहर्षक चित्र प्रस्तुत किया है। यथार्थ और आदर्श का सहज समन्वय सरला के चरित्र में है। सरला के व्यक्तित्व की सम्पूर्णता को उसके अन्तिम समय के इस पत्र द्वारा भली-भाँति समझा जा सकता है—"विवाह दो हृदयों को एक सूत्र में बाँधने वाला पवित्र कर्म है। यहाँ कुछ औपचारिक संस्कारों की अपेक्षा दो हृदयों के मिलने की अधिक आवश्यकता है। ऐसा न होकर दहेज के लोभ में पड़ कर कितने लोग अनिच्छा से विवाह करते हैं और अपने और पराए दिल का सौदा करते हैं. यह सब देखकर भी समाज खुश है क्योंकि इसकी दृष्टि में वह न्याय है। इन अन्धे नियमों की आड़ में मुझ जैसी कितनी अबलाएं पिसती जा रही हैं कोई गिनती नहीं। समाज अन्धा है।

"मैंने विश्वास के साथ अपनी इच्छा से प्रेम किया और उसके प्रेम को भी प्राप्त कर सकी। मैं जानती हूँ कि कानून की दृष्टि से भले ही मैं पापिन हूँ, लेकिन नैतिक दृष्टि से कभी नहीं। मानव के जीवन में कानून ही सब कुछ नहीं, बल्कि उससे

भी उन्नत स्थान नीति का है। इस सत्य को देखने के लिए समाज की आँख कहाँ? इसलिए मुझ जैसे लोगों को जिन्दगी की राह असमय में ही अपने ही हाथों से मिटानी पड़ती है।" पृ० १८३-८४।

सुहासिनी का जीवन त्याग और सेवा का रहा। वह सदा एक समर्पित जीवन जीती रही। माता-पिता की मृत्यु के बाद परिवार की सारी जिम्मेदारी सुहासिनी पर आ गई। सुहासिनी का विवाह भी एक परिस्थिति के कारण हुआ। डाक्टर की लम्पटता के प्रति सुहासिनी के उद्गार ध्यातव्य हैं—"डाक्टर आप भूल कर रहे हैं पल भर में निर्णय कर दिल किसी को सौंपा नहीं जाता है। सच्चे प्रेम में चंचलता नहीं, स्थिरता होती है, विवेक होता है और होती है आत्म समर्पण की भावना।" पृ० १५४।

सुहासिनी अपने विवाह मण्डप में है परन्तु उसका मन सरला के लिए तरस रहा है – देखिए – "मंगल-सूत्र बाँधा जा रहा था। शहनाइयों की मधुर ध्वनि गूँज उठी। दुलहिन सुहासिनी ने फाटक की ओर देखा। उसके खुलने की आवाज न सुन उसकी आँखों से दो बड़ी-बड़ी गरम आँसुओं की बूँदें गिरी। इस शुभ घड़ी में शोक भी आनन्द के साथ यह शोक भी अपना नाता जोड़े मानव को जगत के किसी चिरन्तन सत्य का बोध करा रहा हो जैसे।" पृ० १६८।

सुरेश सरला को चाहकर भी उससे विवाह न कर पाया, तो दूसरी ओर सुरेश के माता-पिता जबर्दस्ती उसे झुकाकर भी उसका अवांछित विवाह न कर सके। अपने-अपने ढंग से सरला और सुरेश इस दुनिया से विदा हुए। सुरेश प्रेमी भीरु और ईमानदार है। उसमें एक मध्यवर्गीय युवक का दब्बूपन भी भरपूर है। सुरेश का अन्तर्द्वन्द्व देखिए—"मैं शादी न करूँ तो सरला का भविष्य क्या होगा? वह मुझे कोसेगी, कृतघ्न समझेगी। मैं ऐसा पाप कभी नहीं कर सकता। ....दूसरे ही क्षण उसके दिल में उसके माँ-बाप छा गए। —मैं अपने माँ-बाप की बात न मानूं तो उनकी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाएगी। ....मुझे अपने माँ-बाप के लिए यह त्याग करना ही होगा।" और मृत्यु से कुछ क्षण पूर्व अपने पिता से सुरेश कहता है— "पिता जी मरने के पहले मुझे क्षमा करें। मैंने असभ्य अपराध किया है। मैंने जिस लड़की से प्रेम किया, वह गर्भवती है। आप जल्दी जाकर उसकी रक्षा नहीं करेंगे तो वह पाप आपके माथे लगेगा। आपसे मेरी अन्तिम इच्छा यही है।" पृ० १८३।

इस प्रकार इस उपन्यास के प्रायः सभी पात्र जीवन की अनचाही पगडंडियों पर चल कर नियति का भार ढो रहे हैं। वे सभी सहृदय और ईमानदार होकर भी विवश है, दुर्बल हैं।

यह उपन्यास अमावस की कालिमा का चित्रण करता है, पर शुक्ल पक्ष की द्वितीया का मौन संकेत भी देता है। यही व्यंजना इसमें गर्भित है।

प्रमुख पात्रों में न होकर भी अत्यन्त व्यक्तित्ववान पात्र है शंकरन नायर।

यह सुहासिनी के घर का पुराना, ईमानदार, समझदार एवं कर्तव्यपरायण नौकर है। इस परिवार में ही इसका सम्पूर्ण जीवन बीत गया। यह स्वाभिमानी भी इतना था कि वृद्धावस्था आने पर स्वतः पृथक हो जाना था। किसी पर भार बनकर नहीं रहना चाहता था। उसने ऐसा किया भी। परन्तु फिर भी उसका नाता इस परिवार से जुड़ा ही रहा। सरला की प्रेमकथा परिवार को शंकरन नायर से ही ज्ञात हुई। उसने लम्बा पत्र सुहासिनी को लिखा जिसके अन्तिम वाक्य ये हैं—"विशेष कुछ लिखने में मैं असमर्थ हूँ। साहस करके मैं तुम्हारे सामने सच्ची बात खोल रहा हूँ। सरला एक युवक के झूठे प्रेम जाल में फँसकर अविवेकपूर्ण व्यवहार कर रही है। तुरन्त यहाँ आकर उचित व्यवस्था न करोगी तो हमारी नाक कट जाएगी।

तुम्हारा बूढ़ा दादा
शंकरन नायर

सुहासिनी के परिवार के मानापमान को शंकरन नायर स्वयं अपना मानापमान मानता था, इसीलिए उसने पत्र में लिखा—"हमारी नाक कट जाएगी।" ऐसे निष्ठावान सेवक आज दुर्लभ हैं।

राजाराम का चरित्र भी उपन्यास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह साधारण योग्यता का किन्तु कर्मठ एवं स्वाभिमानी व्यक्ति है। सुहासिनी का वह रिश्तेदार है। संघर्ष की निरन्तरता उसमें है। परेशान होकर सैनिक जीवन में खपना, फिर लौट कर माता की सेवा करना, तत्पश्चात् सुहासिनी के कार्यों में भरपूर सहयोग देता है, बीच-बीच में दुर्व्यसनों का शिकार भी बनता है, पर भीतर ही भीतर वह लज्जित भी होता है। अवसर आने पर वह अपनी भूलों को स्वीकार भी करता है। वह सुहासिनी के जीवन में अपनी निष्ठा, सरलता और भावुकता से अपना स्थान बनाता है। फलतः सुहासिनी अन्य सुशिक्षितों और धनाढ्य युवकों में से किसी [redacted] चयन न करके, अपने साथी के रूप में राजाराम का ही वरण करती है। "उसने कभी नहीं सोचा था कि राजाराम की नसों में ऐसे उत्तम गुण भर कर गये हैं। व्यक्ति बाहर से देखने में कभी-कभी पागल सा भी दिखाई देता है। लेकिन उसके दिल के भीतर उज्ज्वल गुणों से युक्त देवता का जो निवास होता है, उसे बहुत कम लोग पहचान पाते हैं। जो पहचानता है वही उसका भक्त हो जाता है। इसलिए आत्मा और शरीर में कोई साम्य नहीं होता है। ......ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, त्यों-त्यों सुहासिनी राजाराम के चरित्र और व्यवहारों से प्रभावित हो उसकी ओर झुकती ही गई।" पृ० १६३। जादू वह है जो सर पर चढ़कर बोले, और मूक सचाई का जादू सबसे बड़ा और स्थायी प्रभाव डालने वाला होता है। राजाराम के ठोस और स्वार्थहीन गुणों पर सुहासिनी की मानसिक प्रतिक्रिया द्रष्टव्य है—"राजाराम के चेहरे को सुहासिनी ने ध्यान से देखा लेकिन उसमें कहीं वासना, कृत्रिमता और आकांक्षा दिखाई नहीं दी, बल्कि निर्लिप्तता, श्रद्धा और सात्विक स्नेह भावना दृष्टि-

गोचर हुई। उसने सोचा, आह राजू और राजाराम में कितना अन्तर है। एक सुशिक्षित, दूसरा अर्द्ध शिक्षित, एक अहंकारी, दूसरा स्वाभिमानी! अच्छाई की कसौटी क्या है? व्यक्ति आदर्श की बातें कर सकता है, चिकनी-चुपड़ी बातें करके दूसरों की दृष्टि में तात्कालिक रूप से बड़ा समझा जा सकता है, लेकिन परिस्थिति के सामने व्यक्ति सच्चे रूप में प्रकट होता है।" पृ० १५७-१५८।

व्यक्ति परिस्थितियों का दास भी है और निर्माता भी। यह उसकी योग्यता पर निर्भर करता है कि वह क्या कर पाता है। आम आदमी परिस्थिति की अनुकूलता में ही विकसित होता है अतः परिस्थिति का समुचित निर्माण वांछनीय है।



यह बस्ती ये लोग

श्री बालशौरि रेड्डी का सन् १९६३ मे भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली से प्रकाशित आधुनिक शहरी जीवन पर आधारित व्यंग्य प्रधान मौलिक आंचलिक उपन्यास है। यह कृति १९६१ मे पहली बार 'जीवन मूत्रम्' नाम से तेलुगु भाषा में श्री प्रकाशन से प्रकाशित हुई थी। लेखक ने इस कृति की मूल तेलुगु पांडुलिपि वस्तुतः एक फिल्म के लिए तैयार की थी, बाद में किन्ही कारणों से वह फिल्माई न जा सकी। तेलुगु में इसका भव्य स्वागत हुआ और प्रथम संस्करण ३-४ माह मे ही समाप्त हो गया। जब कोई कृति फिल्म का ध्यान रखकर रची जाती है तो उसमे हृदयात्मकता, चटपटापन, विविधता और कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण कृत्यो को आयोजित किया जाता है। उसमें आम आदमी की पसन्द का ज्यादा ध्यान रखा जाता है अतः कथानक को द्रुत, रंगीन एवं आशुग्राह्य बनाया जाता है। इस दृष्टि से यह कृति अपने मूल रूप मे तैयार हुई थी। श्री रेड्डी ने इस कृति को हिन्दी में रूपान्तरित करते समय इसके कथानक और पात्रों में आवश्यक परिवर्तन एवं परिवर्धन किया है। अतः यह मूलतः तेलुगु कृति का हिन्दी रुपान्तरण होते हुए भी अपने औपन्यासिक रूप में सर्वथा मौलिक कृति है।

इस नगरांचलीय कृति को श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के 'शहर मे घूमता हुआ आईना' की परम्परा मे रखा जा सकता है। बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली महानगरों के जीवन पर कई कृतियां प्रकाशित हैं। यह कृति मद्रास नगर के अनेक जीवन-पार्श्वों को उद्घाटित करती है। "यह बस्ती ये लोग अपेक्षाकृत एक छोटी रचना है, पर शहरी-जीवन पर यह एक बड़ा व्यंग्य है।" फ्लेप। हमारे महानगरों की बाह्य प्रगति और जीवन की तेज रफ्तार अपने भीतर कितनी बहुमुखी क्षुद्रता भरे हुए है, इसी तथ्य को यह कृति प्रस्तुत करती है।

कथानक—इस उपन्यास का कथानक ३२ लघु खण्डो मे विभाजित है। ये सभी खण्ड एक लघु किन्तु महत्वपूर्ण तथ्य को संक्षेप मे प्रस्तुत करते हैं। ये खण्ड प्रायः ३ से ५ पेज तक के हैं। सम्पूर्ण कथानक मे मद्रास महानगर के अनेक जीवन अंचल प्रस्तुत हैं। मद्रास रेलवे स्टेशन, ब्याज खोर राजस्थानी-मारवाड़ी समुदाय, हलवाई की दुकान मे मिलावट की मिठाई, सेठ दीनदयाल के गोदाम के सभी सामान मे नकली माल की मिलावट और पूरी चालाकी से उसकी खपत, तिलकधारी सेठ की तीन पत्नियाँ, पत्नी का दुराचार, सेठ की पिटाई, गोविन्द की महत्वपूर्ण भूमिका, उसकी नौकरी से छुट्टी, युवती का प्रेम प्रसंग, पत्र प्रेषण, सरदार द्वारा भिखारियों का शोषण, भिखारियो की रक्षा, समाज सेवा समिति, सरोजा का त्याग और योग्यतापूर्ण कार्य, साधुमंडल द्वारा कमण्डलों में अफीम की चोरी, सेठों

का कुचक्र, रामलीला का हास्य-दृश्य और गोविन्दन की वानर भूमिका, रोजा-सरोजा दृश्य और सरोजा-गोविन्द-परिणय की स्थिति आदि घटनाएँ कथानक में गुम्फित हैं। ये समस्त घटनाएँ मिलकर मद्रास महानगर की बहुमुखी विद्रूपता को प्रकट करती है। भारत गाँवों का देश है और आज हर ग्रामीण गाँवों को छोड़कर शहरों की ओर जीविका और सुख की आशा से दौड़ रहा है, पर परिणाम प्रायः क्या हो रहा है। अतिनिर्धन से लेकर अतिधनवान तक सभी अपने अपने ढंग से चतुर, चुस्त, चालाक, धूर्त और अवसरवादी तथा मुनाफाखोर बने हुए हैं। दर्जी, धोबी, तेली, ग्वाला, कुली, रिक्शेवाला, छोटा पंसारी अपने काम में मिलावट और मक्कारी करते हैं तो नेता, वकील, डाक्टर, सेठ एवं व्यापारी अपने ढंग से ऊँचे पैमाने पर बेईमान हैं। पुलिस और अध्यापक भी इसी गिरफ्त में है। प्रस्तुत उपन्यास से एक दो प्रसंग प्रस्तुत करने से बात साफ हो जाएगी।

"राजू ने गोविन्द के उत्साह को और भी बढ़ाते हुए कहा। वह सामने वाली ऊँची इमारत एक सेठ की है। वह अपने खानदान के साथ बहुत पहले खाली हाथ मद्रास आया। पत्नी और बच्चों का पालन-पोषण करने के लिए कोई नौकरी भी नहीं मिली। वह सोचता रहा कि समस्या कैसे हल की जाए। व्यापार करने के लिए हाथ में पूँजी भी नहीं थी। दिन भर गली-कूचे छानते हुए उसने रद्दी कागज और खाली सिगरेट के डिब्बे इकट्ठे किये। एक बोरा छह आने के हिसाब से बेचने लगा। रोज पाँच आने खर्च करके एक आना बचाता गया। उससे मूँगफली खरीदकर भुनवाई, पुड़िया बनाकर बस स्टैण्ड पर बेचने लगा। पूँजी बढ़ती गयी, एक से दो रुपये हुए। धीरे धीरे दो रुपये बीस हुए। व्यापार करने के लिए हाथ में पूँजी आ गयी। बीस रुपये से वह सूद का व्यापार करने लगा। दिनभर मेहनत करके भी आधा पेट खाकर सोने वाले मजदूर और किसान उससे कर्ज लेने लगे। वह ब्याज प्रतिदिन रुपये के चार आने के हिसाब से वसूल करने लगा। ब्याज पहले ही वसूल किया करता। सुबह बारह आने ब्याज पर देता और शाम को उसका कान ऐंठकर एक रुपया वसूल करता। मजदूर और निम्न जाति वर्ग में जो कि सदा पैसों के लिये तरसा करते हैं, वह उदार व्यक्ति समझा जाने लगा। फिर क्या था, सूद पर रुपये लेने वालों की संख्या बढ़ गयी। ''''उसने एक छोटी-सी दुकान खोली। अब चीजें गिरवी रखकर अच्छे ब्याज पर उधार भी देने लगा। उसका व्यापार खूब चमका।''''''लोगों को यह मालूम न था कि वह गुप्त रूप से जोंक की तरह उनकी कड़ी मेहनत का फल बैठे बैठे चूस रहा है। उल्टे वे लोग यह भी समझने लगे कि यह विपत्ति में तारनहार है। इस प्रकार वह धन के साथ प्रतिष्ठा भी पाता गया। उसकी व्यावहारिक कुशलता की पैनी धार के कई परिवार शिकार हुए। सबकी मेहनत का फल चुम्बक की भाँति आकर्षित हो उस सेठ के यहाँ जमा होने लगा। लखपति बन गया। उसका नाम पहले मल्लू राम था। अब मल्लू राम सेठ कहलाने लगा। आज मल्लूराम एण्ड सन्स नाम से कई

दुकाने चल रही हैं। लाखों रुपये उधार देते है, हजारों रुपये सूद वसूल करते हैं।" पृ० १५-१६। इस प्रकार एक साधारण व्यक्ति बाहर से एक भिक्षुक के रूप में आकर लाखो-करोडों रुपये अपनी चतुराई-चालाकी और गोमुखी व्याघ्र वृत्ति से हड़पता ही चला जाता है। तारीफ यह है कि यह वर्ग जघन्य कोटि का लुटेरा और शोषक होकर भी समाज मे प्रतिष्ठा पाता है। यह दान, दक्षिणा भी देता है। पूंजीवादी समाज व्यवस्था में सबसे बड़ा और अजेय शत्रु यह पूंजीवादी वर्ग ही होता है। यह प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनो प्रकार का भयंकर शोषण करता है। किसी भी प्रगतिशील समाज का अन्तिम लम्बा युद्ध इसी भीतरी शत्रु से होता है।

हमारे सामाजिक संगठनों की काली करतूतों पर भी इस उपन्यास मे प्रभावकारी प्रकाश डाला गया है। नारी संगठनों का हाल और भी बुरा है। द्रष्टव्य है—"सरोजा धीरे-धीरे, 'समाज सेवा समिति' का यथार्थ रूप समझने में सफल हो सकी। उसको भली भाँति मालूम हो गया कि समिति की कार्यकारिणी समिति के सभी सदस्य गोमुखी व्याघ्र थे। समिति के लिए जो चन्दा वसूल किया गया था उसका अधिकांश हिस्सा गायब हो चुका था। इसका कोई हिसाब-किताब ही नही था और न कागज पत्र ही।....यह देख उसका हृदय क्षोभ से भर उठा। उसने निश्चय किया कि अगले दिन होने वाली बैठक में वास्तविकता का परिचय देकर समिति की गंदगी को साफ करना चाहिए। समिति के अध्यक्ष राधाकृष्ण जी बहुत धूर्त थे। वे सरोजा को पूरी तरह समझ गये। अतः वे तरह-तरह के प्रलोभनों से सरोजा को फुसलाने लगे। उससे शादी करने की और अपनी पत्नी को तलाक देने की बात भी कही! पर सरोजा टस से मस न हुई।" वह उसके स्वभाव को ठीक समझ गई। उसने जान लिया कि देखने में यह आदमी जितना सभ्य मालूम होता है, भीतर वह उतना ही पापी, दुष्ट और वासना का कीडा है।.... "सरोजा मारे क्रोध के नागिन सी फुफकारने लगी। चप्पल उतारकर उसने राधाकृष्ण को सबक सिखाना चाहा। वह भी क्रोध में पागल हो गया था।—"अच्छा देखूंगा। तेरी रक्षा कौन करता है।" यह कहते हुए वह सरोजा के साथ जबर्दस्ती करने को बढ़ा। इसी समय गोविन्द ने सहसा कमरे मे घुसकर राधाकृष्ण की गरदन पकड़ ली। उसको खूब मरम्मत करके उसे कमरे के बाहर फेंक दिया।" १११, ११२।

पात्र एवं चरित्र-चित्रण का जहाँ तक प्रश्न है, इस कृति मे बीस से अधिक पात्र हैं और वे प्रायः परिस्थितियों के हाथ के खिलौने हैं। वे एक निश्चित वर्ग चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं। दयानिधि, राधाकृष्ण, वकील सुब्रह्मण्यन्, मिस्टर बी०आर०, मिस्टर के०आर०, रोजा, राजू, टाटवाला, धनलक्ष्मी, संन्यासी, तिलकधारी सेठ, राधाबाई, सूर्यकान्तम् एवं प्रेमलता आदि ऐसे ही पात्र हैं। सरोजा और गोविन्द के चरित्र एक ऊर्जा एवं विजता रखते हैं। ये दोनों पात्र परिस्थितियों से निरन्तर संघर्ष करते हुए अपनी सार्थकता में जीते हैं। इन दोनो पात्रो का व्यक्तित्व स्वार्थ, लिप्सा और छल-

कपट से ग्रस्त नहीं है। ये दोनों अपनी-अपनी परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए एक स्वावलम्बी और सात्विक जीवन जीने का रास्ता खोजते रहते हैं। दूसरों को दुख दर्द को अपना समझना और सामाजिक न्यास के निरन्तर प्रयत्न करना इनकी निजी विशेषता है। आइए इनके व्यक्तित्व से साक्षात्कार करें—

गोविन्द

गोविन्द एक निम्नवर्गीय परिवार का निर्धन, अशिक्षित, अनाड़ी, चंचल, साहसी एवं स्वाभिमानी ग्रामीण व्यक्ति है। वह एक ग्रामीण युवक की प्रायः सभी खूबियों एवं खामियों का प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास के प्रथम पृष्ठ पर ही उसकी पहली झलक मिलती है। 'एक बूढ़ा दादा अपनी तीसरी औरत के साथ कहीं जा रहा था। एक आवारा ने दाँत दिखाते हुए दादा से पूछा—'दादा लड़की को कहीं ब्याहा।' दादा गुस्से से बोला, 'अरे वेवकूफ, यह लड़की नहीं, मेरी पत्नी है।' यह विजयवाड़ा स्टेशन के प्लेटफ़ार्म का दृश्य है।' बाबू टिकट कहाँ मिलता है ? यह पूछते हुए एक गँवार टिकट घर के पास आया। वहाँ एक साहब पहले दर्जे का टिकट कटा कर जल्दी-जल्दी जाते हुए उस गँवार से टकरा गया। दोनों नीचे गिर पड़े। साहब के हाथ का चमड़े का बैग दूर जा गिरा। देहाती जल्दी-जल्दी उठा और बैग को अपने हाथ में ले उलट-पलट कर देखने लगा। इतने में वह साहब भी अपनी धूल झाड़ते हुए खड़ा हो गया। देहाती को बैग को लिये हुए देख साहब ने डाँटा—'ऐ, यह तुम क्या करते हो।' देहाती नम्र भाव से बोला —'साहब यह थैला आपका है, मैं मानता हूँ। लेकिन आप मुझे 'ऐ' से कहते हुए पुकार रहे हैं। मैं बैल या भैंस नहीं हूँ। आदमी हूँ। मेरा नाम गोविन्द है। मैं देहाती हूँ। किसी काम पर शहर जा रहा हूँ।.....लीजिए यह आपका थैला।' इस आरम्भिक उद्धरण से गोविन्द का बीज रूप परिचय प्राप्त हो जाता है। इसके तुरन्त बाद गोविन्द और टिकिट-बाबू का वार्तालाप ग्राम्य विनोद की स्थिति उत्पन्न करता है। रेल यात्रा की मुसीबतों का दृश्य उपस्थित होता है। बिना टिकट यात्रा करने वालों की धांधली का प्रभावक चित्रण है।

मद्रास नगर में प्रवेश करते ही गोविन्द को सूटकेस उठाने और ढोने का दयानिधि सेठ ने चवन्नी का काम दिया। गोविन्द को पाँच मिनट में चवन्नी प्राप्त कर खुशी हुई। वह चवन्नियों का गुणा करके मन ही मन फूला न समाया। इसके बाद गोविन्द मूर मार्केट के निकट एक नम्बरों वाले जुए का दृश्य देखता है। वह देखते-देखते खेल की चालाकी समझ जाता है और स्वयं खेलकर काफी फायदा उठा लेता है और टाटवाले का भंडाफोड भी कर देता है। महानगरीय जीवन का यह भी एक दृश्य है।

इसके पश्चात् गोविन्द का दयानिधि के अतिरिक्त उपन्यास की अनाथ नायिका सरोजा से परोक्ष परिचय होता है। सरोजा की नानी धनलक्ष्मी के आतंकवादी

स्वभाव की भी जानकारी उसे हो जाती है। धनलक्ष्मी सरोजा का विवाह दयानिधि से कर देने पर तुली हुई है परन्तु सरोजा ने पूर्णतया यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया है। फलतः सरोजा को घर छोड़ कर भागना पड़ा और तरह-तरह की यातनाएं सहनी पड़ीं। यहीं से कथानक नया मोड़ लेता है।

इसके अनन्तर गोविन्द ने हलवाई की नौकरी की, सेठ की चौकीदारी की, मिलावट का धंधा देखा, गुप्त वेश्यावृत्ति के दृश्य देखे। इन सब दृश्यों से उसका मन बराबर विद्रोह करता रहा। सरोजा की रक्षा भी गोविन्द ने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अनेक बार की अन्ततः सरोजा ने गोविन्द के गुणों से प्रभावित होकर स्वयं को उसकी जीवन संगिनी के रूप में समर्पित कर दिया। कुल मिलाकर गोविन्द एक सतत संघर्षशील पात्र है। वह सदा अन्याय और शोषण का विरोध करता है। उसमें जीवन जीने की भी अद्भुत कला और शक्ति है। गोविन्द इस कृति का सहज एवं चैतन्यमय नायक है। वह सहज विकासशील है।

सरोजा

सरोजा इस उपन्यास की नायिका है। उसका चरित्र विषम परिस्थितियों की अग्नि में तपकर अपना कुन्दनत्व सिद्ध करता है। गोविन्द मूलतः न्यायनिष्ठ और ईमानदार है, परन्तु परिस्थितिवश वह समय-समय पर जुआ खेलता है, कार के पीछे चोरी से बैठता है बानर वृत्ति धारण करता है और इसी प्रकार के अनेक हथकंडे अपनाता है। सरोजा किसी भी परिस्थिति में स्वयं का नैतिक, वास्तविक एवं व्यावहारिक पक्ष कमजोर नहीं होने देती। वह अपनी नानी के घर से आत्म रक्षा एवं अपने जीवन निर्णय के पक्ष को लेकर भागती है और अनेक कटु एवं भयावह परिस्थितियों से टकराती है और अपनी निजता एवं नैतिक सामाजिक स्थिरता प्रमाणित करती है। गोविन्द एक बेनामी कुल का युवक है। वास्तव में सरोजा एक सहज आदर्श में जीने वाली नारी है। समय आने पर एवं वास्तविकता का ज्ञान होने पर वह एक निडर, उदार एवं सहज मानवी के रूप में गोविन्द के लिए समर्पित भी होती है। प्रत्येक होनहार मार्ग पर अपनी सक्षम छाप सरोजा छोड़ती ही है।

सरोजा के उज्ज्वल चरित्र का साक्षात्कार उसके जीवन की कतिपय घटनाओं से सहज ही हो जाएगा। सरोजा का जीवन वृत्त और संक्षेप में इस प्रकार है—

"धनलक्ष्मी बड़ी धनी थी। उसके पुत्र और पुत्रवधू का देहान्त हो गया था। संसार में उसका मात्र सरोजा के कोई अपना कहने वाला नहीं था। सरोजा उसकी पोती थी। वही उसकी जायदाद की उत्तराधिकारिणी थी। दयानिधि उसका दूर का रिश्तेदार था। उस पर धनलक्ष्मी का काफी भरोसा था। धनलक्ष्मी का विचार था कि यदि सरोजा का विवाह उसके साथ कर दिया गया तो वही इस समस्त जायदाद का समुचित व्यवहार देख लेगा। लेकिन सरोजा को यह विवाह कतई पसन्द न

था। वह ऊँची शिक्षा प्राप्त कर समाज की सेवा करने की इच्छा रखती थी। इस उद्देश्य को सफल बनाना ही उसने अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था। अपने माता पिता की अकाल मृत्यु के उपरान्त वह अपनी नानी के यहाँ आई।"

धनलक्ष्मी पुराने विचारों वाली थी; इसलिए उसने सरोजा की कालेज शिक्षा बन्द कर दी। उसका विश्वास था कि लड़कियाँ ऊँची शिक्षा पाकर बिगड़ जाती हैं। उसके लिए केवल साक्षर होना काफी था। सरोजा अपने संकल्प पर पानी फिरते देख विवश होकर मौन रही। फिर भी कभी कभी वह अपने संकल्प की पूर्ति का सपना देखती रही। धनलक्ष्मी ने सरोजा के आदर्शों पर कुठाराघात किया। इसलिए सरोजा को यह घर नरक तुल्य प्रतीत होने लगा। पृ० २०२।

धनलक्ष्मी ने सरोजा से झल्लाकर कहा, "अगर तुम दयानिधि के साथ विवाह नहीं करोगी, तो मेरी जायदाद में से एक कौड़ी भी तुम्हें नहीं मिलेगी।" सरोजा ने उसी स्वर में कहा, "तुम्हारी जमीन जायदाद की चाह रखने वाली यहाँ कोई नहीं। न कभी मैं उसे अपनी समझती थी, और न समझूँगी ही।" पृ० २२।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि सरोजा को आरम्भ से ही विपरीत एवं चुनौती भरी परिस्थितियों में जीना पड़ा। वह जल्दी ही अनाथ हो गई। उसकी नानी ने उसकी उच्च शिक्षा बन्द कर दी और उसे एक अनचाहे सेठ दयानिधि से विवाह करने पर विवश किया, परन्तु उसने (सरोजा ने) दृढ़ता से स्वीकार किया। तब नानी ने उसे अपनी जायदाद से वंचित कर देने की भयंकर धमकी दी। सरोजा ने इस धमकी का भी बहुत निर्भयतापूर्ण उत्तर दिया। इन आरंभिक तीन-चार घटनाओं से सरोजा के निर्भय, स्पष्ट एवं स्वाभिमानी व्यक्तित्व का सहज उद्घाटन होता है। वह एक संकल्पवती नारी है और अन्याय के समक्ष झुकनेवाली नहीं है।

आखिरकार सरोजा को चुपके से नानी का घर छोड़कर भाग जाने का निर्णय लेना पड़ा। वह भागी और अपने चाचा एवं तीन-चार रिश्तेदारों से भी तिरस्कृत एवं उपेक्षित हुई। फिर रिक्शेवाले के चंगुल से गोविन्द के द्वारा बचायी गयी और अपनी एक सखी के घर पहुँची।

इसके पश्चात् 'समाज सेवा समिति' का सरोजा ने विज्ञापन देखा और तुरन्त अपना आवेदन-पत्र भेज दिया। उसे यह कार्य अपनी आकांक्षा के अनुरूप लगा। उसका चयन भी हो गया। सरोजा ने समिति में जी भर के कार्य किया और नारी समाज की उन्नति के विविध उपाय सोचने लगी। परन्तु यहाँ भी उसे सहकर्मिणी नारियों के विरोध, ईर्ष्या और घोर असहिष्णुता का शिकार होना पड़ा। समिति के सर्वेसर्वा राधाकृष्ण स्वयं दुराचारी थे और अपनी पाँचवी पत्नी राधाबाई के हाथ के खिलौने भी थे। राधाकृष्ण ने तरह-तरह से सरोजा का दमन करना चाहा और अन्ततः बलात्कार जैसे राक्षसी कृत्य पर भी आमादा हो गये। अन्ततः इस संभावित भीषण दुर्घटना से सरोजा की रक्षा वहाँ आकस्मिक रूप से पहुँच कर गोविन्द ने की।

सरोजा की नानी धनलक्ष्मी परम्परावादिनी थी और सरोजा को अपने ढंग से विवाहित एवं नियन्त्रित भी रखना चाहती थी। सरोजा के भाग जाने पर वह बहुत दुखी भी हुई। उसका ममत्व जागा। उसने सरोजा को पुनः प्राप्त करने के अनेक प्रयत्न भी किये और अन्ततः अपनी जायदाद सरोजा के नाम लिखकर चल बसी।

सरोजा गोविन्द के साथ भागी। परन्तु उसे गोविन्द पर झूठा शक हो गया और उसे छोड़कर भी भाग निकली। इसके पश्चात् अभिनेत्री रोजा और सरोजा का आकृति-साम्य एक समस्या बन गया। सम्बा कुचक्र सरोजा की सम्पत्ति हड़पने का चला। अन्ततः फिर गोविन्द की सहायता से सरोजा मुक्त हुई और उसने गोविन्द के देवत्व को पहिचाना।

निष्कर्ष

यह उपन्यास मूलतः सिनेमा के लिए रचा गया था। अतः थोड़ा चमत्कार, आकस्मिकता, मनोरंजन एवं घटना वैविध्य इसमें है। यह कृति घटना प्रधान होते हुए भी चरित्र प्रधान है। इसमें महानगरीय जीवन के दूषित वायुमण्डल में होनहार युवक-युवतियों का कैसा शोषण हो रहा है और दूसरी ओर पूँजीवादी समाज व्यवस्था कैसे पनप रही है, इसका लोमहर्षक चित्रण है। कृति का शीर्षक 'यह बस्ती ये लोग' पूर्णतया उचित है। नगरांचलीय उपन्यास 'बूँद और समुद्र' तथा 'शहर में घूमता आइना' की परम्परा का सशक्त दस्तावेज यह है।

"प्रस्तुत उपन्यास से उनकी (श्री रेड्डी की) सरस शैली, सरल भाषा, स्पष्ट अभिव्यक्ति और सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का पर्याप्त प्रमाण मिल जाता है। साहित्य में आप निश्चय ही 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' का आदर्श प्रस्तुत करने में प्रयत्नशील हैं।" यह लघु कृति शहरी जीवन पर एक बड़ा तीखा व्यंग्य है।



भग्न सीमाएँ

सन् १९६९ में प्रकाशित श्री बालशौरि रेड्डी का यह तीसरा उपन्यास है। यह उपन्यास मध्य वर्गीय हिन्दू परिवार की प्रेम एवं विवाह-समस्या के ताने-बाने से बुना गया है। भारत की अपनी सामाजिक परम्पराएँ हैं जो सहस्रों वर्षों से खींचातानी करती चली आ रही हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के ४२ वर्ष बाद भी और अनेक सुधारवादी आन्दोलनों के बावजूद ये परम्पराएँ अपना अस्तित्व किसी न किसी प्रकार बनाए हुए हैं।

इस उपन्यास का कथानक डॉ० राजेन्द्र को केन्द्रीभूत करके रचा गया है। उसी के अनुभूति प्रधान उद्गारों से उपन्यास प्रारम्भ होता है और अन्ततः उसी नियति में समाधि भी लेता है। —"त्याग, कर्तव्य और प्रेम ये तीनों क्या मानव जीवन के लिए आवश्यक हैं। ....मैं समस्त प्रयत्न करके भी अपने जीवन को सुखी नहीं बना सका। ....जीवन भी इन्द्रधनुष की भाँति कैसा रंगीन है। प्रत्येक रंग का अपना-अपना गुण, अपनी-अपनी शोभा और अपनी-अपनी कान्ति होती है। लेकिन मैं अपने जीवन-रूपी ग्रन्थ के पृष्ठों को पलटता हूँ तो मुझे हर पन्ने पर और प्रत्येक परिच्छेद में शोक तप्त कहानी नजर आती है। शायद जीवन का दूसरा नाम ही दुखों की कहानी हो अथवा किसी-किसी के लिए सुखों की कहानी भी हो मैं नहीं जानता।

कुल १७ परिच्छेद एवं १६७ पृष्ठों में यह कृति शीला का त्रिक अनेक उतार-चढ़ावों से जूझता रहता है। डॉ० राजेन्द्र और शीला एक-दूसरे को पूरी तरह चाहकर भी प्रेम-विवाह नहीं कर पाते। शीला का मरण हो जाता है। तो दूसरी ओर वसन्ता सुन्दर, सुशिक्षित एवं योग्य है और डॉ० राजेन्द्र की ममेरी बहिन भी है, वह राजेन्द्र से प्रेम भी करती है, पर राजेन्द्र उसे विवाह के स्तर पर अस्वीकार कर देता है। दूसरे कथावृत्त में आनन्द और माला एक लम्बी अवधि के बाद विवाहित हो जाते हैं। अनेक उपकथाएँ बीच-बीच में आकर मूल कथा का पोषण करती हैं। शीला की मौसी, वसन्ता के माता-पिता, शीला के पालक पिता आदि उपकथाओं की सृष्टि करते हैं।

उपन्यास का शीर्षक "भग्न सीमाएँ" उपन्यास की अन्तिम पंक्तियों में अपनी सार्थकता स्पष्ट करता है—"सूर्यास्त के साथ शीला की प्रभा अस्त हो गई। मैं देखता रहा—देखता ही रह गया। मेरी चेतना सुख-दुःख की अनुभूतियों को शक्ति खो चुकी थी। "मेरे हृदय और मस्तिष्क की सीमाएँ भग्न हो चुकी थीं।" नायक इस घोर

असहनीय परिस्थिति में अपने हृदय और मस्तिष्क का सन्तुलन न रख सका अर्थात् इससे अधिक दुःखद घटना उसे और क्या हो सकती थी। जहां तक सीमाओं की भग्नता का प्रश्न है वे उपन्यास में जातिवाद निर्धारित विवाह एवं दहेज आदि के स्तर पर भी बुरी तरह टूटी हैं और यही उपन्यास की जीवन्तता भी उभरती है।

यह उपन्यास सामाजिक कथ्य से परिपूर्ण होते हुए भी मूलतः चरित्र प्रधान उपन्यास है। इसमें लोकगामी चरित्र भी हैं और व्यक्तित्ववान् भामण्डल चरित्र भी। शीला की मौसी, वसन्ता के माता-पिता और अन्य रिश्तेदार भी लोकगामी चरित्र हैं। डॉ० राजेन्द्र, शीला, आनन्द और वसन्ता उपन्यास के दीप्तिवान् चरित्र हैं। अन्याय और रूढ़ियों का आजीवन विरोध, जातिवाद एवं वर्गवाद से निर्णायक युद्ध और सार्थक जीवन के लिए निज-निर्णय की शक्ति ही भामण्डल चरित्र की कसौटी होती है। त्याग और कर्तव्यपालन की उसमें अद्भुत शक्ति होती है।

ऐसे प्रथम कोटि के चरित्र के दर्शन हमें इस उपन्यास की नायिका शीला में होते हैं। शीला का जीवन जन्म से मृत्यु पर्यन्त जीवन मूल्यों के संघर्ष का जीवन है। उसे अपने असली माता-पिता का पता नहीं, वह तो बाल्यावस्था से ही एक पेशेवर वेश्या परिवार में पालित हुई। बाल्यकाल से ही उसमें उस घराने के समस्त रीति-रिवाजों और पेशे का उग्र विरोध रहा। उसने विरोध प्रकट भी किया और समय पाकर उस नर्क से भाग भी निकली। मृत्यु की गोद से किसी उदार नागरिक ने उसे बचाया और पुत्री के रूप में पाला। अनेक ललित कलाओं और मानवीय गुणों में पारंगत होने पर भी उसमें अपार शालीनता और आत्मसम्मान सदा विद्यमान रहा। पालक पिता, डॉ० राजेन्द्र, आनन्द, वसन्ता और माला आदि सभी चरित्रों पर उसकी निःस्वार्थता, शालीनता कला और सदाशयता की सदा भव्य छाप पड़ी। शीला के चरित्र की सर्वोच्चता तब सिद्ध होती है जब वह डॉ० राजेन्द्र के रिश्तेदारों से प्रार्थित होने पर अपने निश्चित प्रेम-विवाह के परित्याग का उन्हें आश्वासन देती है और अपने पिता के साथ उस नगर से दूर बहुत दूर चली जाती है। दूसरों के हित के लिए अपने जीवन का, प्रेम सम्बन्ध का और सर्वस्व का हँसते-हँसते त्याग करना तलवार की धार पर चलने से कम नहीं है। अतः सुस्पष्ट है कि शीला उपन्यास का सर्वाधिक दीप्त चरित्र है।

यद्यपि कथानक में डॉ० राजेन्द्र का चरित्र ही प्रधान है, डॉ० राजेन्द्र उपन्यास केन्द्र बिन्दु है। वसन्ता, माला, शीला और आनन्द उसे घेरे हुए हैं, पर त्याग, कार्य-क्षमता और व्यक्तित्व-सार्वभौमता की भूमि पर शीला उससे आगे है। शीला के जीवन में संघर्ष और उत्थान-पतन का तांता लगा हुआ है। वह वस्तुतः परम स्वाभिमानिनी होकर भी जीवन भर दूसरों के लिए ही जीती रही और अन्ततः अपार त्याग के साथ उसका प्राणान्त भी हुआ।

डॉ० राजेन्द्र का व्यक्तित्व एक नायक का व्यक्तित्व है। उसमें योग्यता, सेवा,

प्रेम, सौहार्द और कर्तव्यपालन की अद्भुत शक्ति है। वह आत्म निर्णय की भी पूरी क्षमता रखता है और अवसर आने पर प्रकट भी करता है। वह डॉक्टरी पेशे में दक्ष है। बीमारों का इलाज पूरी तन्मयता से करता है। शीला के प्रति उसका आकर्षण सुन्दरता, गुण और कला के आधार पर ही होता है। धीरे-धीरे यह प्रेम का रूप धारण कर लेता है। इसमें दहेज एवं जाति आदि का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। वैसे वसन्ता से उसका विवाह कराने के लिए सभी रिश्तेदार पूर्णतया तैयार हैं और वसन्ता स्वयं भी चाहती है। वसन्ता, सुशिक्षित, सुन्दर, सम्पन्न होते हुए रिश्ते में भी अनुकूल पड़ती है। डॉ० राजेन्द्र वसन्ता के समस्त गुणों को जानता है और सराहना भी करता है, पर विवाह के मामले में वह व्यक्तिगत रुचि और भावना को ही महत्त्व देता है और शीला के प्रति अपनी इच्छा भी प्रकट करता है। अपनी बहन माला और आनन्द के विवाह को वह प्राथमिकता देता है। इधर वसन्ता भी अत्यन्त स्वाभिमानी नारी है। वह डॉ० राजेन्द्र को चाहकर भी कभी स्वयं प्रस्ताव नहीं रखती है। जब उसे पता भी लगता है कि राजेन्द्र उसे नही चाहता, तो वह इस बात पर भी अपनी सहजता नही छोड़ती है। किसी प्रकार का विरोध वह नहीं करती है।

परन्तु राजेन्द्र की नियति बड़ी विचित्र निकली। अन्ततः वह शीला से विवाहित न हो सका और वसन्ता की बात कही अधर में अटककर रह गयी। डॉ० राजेन्द्र की हताशा आज भी अपना समाधान खोज रही है। कुछ व्यक्ति सुयोग्य एवं सहृदय होकर भी आजीवन अपनी अपूर्णता में जीते रहते हैं—पूरे मौन के साथ।

वसन्ता का चरित्र भी कम महिमा मंडित नही है। उसमें प्रेम की उत्कट आकांक्षा है, पर उद्दण्डता और वाचालता नहीं, उसमें उच्चशिक्षा और सौन्दर्य है पर अहंकार नही, वह प्रेम में तपना जानती है पर गलदश्रु भावुकता से कभी दीनता नहीं दिखाती।

प्रेमी की अस्वीकृति एवं अनिच्छा ज्ञात होते ही वह स्वयं को अत्यन्त संतुलित करती है और आत्म सम्मान के साथ रहती है। वह समान प्रेम मे विश्वास रखती है। डॉ० राजेन्द्र और शीला के प्रति भी उसके मन मे विरोध, शत्रुता एवं असहिष्णुता के घटिया मनोविकार पैदा नही होते। वह वसन्ता जैसी गरिमामयी नारी ही है जो शीला के प्राण संकट में देख अपनी जान पर खेल कर भी अपना खून देती है।

वसन्ता सब कुछ होकर भी एक खालीपन से भीतर ही भीतर संघर्ष करती रही। उसने अपनी जैसी सहस्रों महिलाओं को ध्यान में रखकर यह उचित ही निर्णय लिया कि विवाह जीवन की अनिवार्यता नही है। विवाह सहज रूप मे सही व्यक्ति से हो सके तो ठीक है, अन्यथा विवशता में अवांछित व्यक्ति से बंध जाने पर जीवन नरक भी बन सकता है। ऐसे मनचाहे सहस्रों विवाह प्रतिदिन दुर्घटना ग्रस्त होते रहते हैं।

वस्तुतः वसन्ता का चरित्र हमारे रूढ़िग्रस्त समाज के लिए एक चुनौती है और नारी समाज के लिए एक जागरण संकेत ।

यह कहना सर्वथा उचित है कि लेखक ने सभी चरित्रों को उनकी पूर्णता में प्रतिष्ठित किया है । कृति में आदर्श और यथार्थ का भव्य सन्तुलन है । उपन्यास वह कल्पनामूलक उचित विस्तार युक्त गद्यमय आख्यान है जिसमे चरित्र और कार्य जो हमारे सच्चे जीवन को प्रस्तुत करते हैं, एक कथासूत्र में प्रस्तुत हों । श्रेष्ठ उपन्यास में कथानक और पात्रों का समुचित तालमेल होता ही है, फिर भी आधुनिक उपन्यास की कसौटी उसके चरित्र प्रधान होने में है। उपन्यास मानव चरित्र का चित्र है। अतः उसमें मानव के स्वभाव, गुण, रुचियों, अरुचियों एवं कार्य-व्यापारों का चित्रण अपेक्षित है ! 'भग्न सीमाएँ' उपन्यास चरित्र प्रधान उपन्यास होते हुए भी वह चरित्रों के अन्तरंग विश्लेषण में अपेक्षित रूप से पूरा नही उतरता । उसका नायक एवं नारी पात्र किसी समस्या या द्वन्द्व की स्थिति से बहुत जल्दी निकलकर निर्णयात्मक हो जाते हैं । परन्तु उनमे संघर्ष, घुटन और जीवन्तता की मात्रा से भरपूर हैं । व्यक्तित्व की पूर्णता एक अलग बात भी है । श्री रेड्डी के सभी उपन्यास प्राय एक दृष्टिकोण के साथ अकुरित होते है और धीरे-धीरे विटप का रूप धारण करते है । इसमे पात्रो की सीमा होती है । प्रेमचन्द जैसे महान उपन्यासकार के पात्र भी प्रायः व्यक्तित्व हीन हैं अतः घटनाओं के वर्फ से जड़ी भूत से हो गए हैं । उनका जो कुछ भी व्यक्तित्व है वह समाज-सापेक्ष अथवा घटना-समस्या मुखापेक्षी है । अनेक अवसरों पर तो स्वयं प्रेमचन्द अपने पात्रों के मन्तव्यो और व्यापारों का स्पष्टीकरण देकर, उनकी उँगली पकड़ कर मानों उन्हें चलाते है । इस फलक पर भी बालशौरि रेड्डी के उपन्यास रखे जा सकते हैं । श्री रेड्डी की इस कृति में एक ही घटना की समग्रता नही है । पात्रो की अपनी-अपनी समस्याएँ हैं और वे उन्हे अपने-अपने ढंग से सुलझाते हैं, या फिर उनमें उलझ कर स्वयं को खो बैठते हैं । परिस्थिति और पात्रो की रस्साकशी इस कृति की निजी विशेषता है । पात्रों का अपना सकल्प है, विवेक है । शीला के ये उद्‌गार उसके व्यक्तित्व के निर्णायक हैं कि वह एक सजीव पात्र है अथवा एक यन्त्र का पुर्जा-मात्र जो कथा का भार ढो रहा है—"डाक्टर, सच्चा प्रेम प्रतिफल नहीं चाहता । वह यही चाहता है कि जिससे प्रेम हो, वह सुखी रहे । मैं आपका सुख और आनन्द चाहती हूँ । अतः आपसे यही निवेदन करती हूँ कि आप मुझे भूल जाने की कोशिश करें, इसी मे मेरी प्रसन्नता है । ....आपके जीवन में पहले वसन्ता ने प्रवेश किया, तदुपरान्त मैंने । इसलिए वह न्यायसंगत है कि प्रथम व्यक्ति को ही स्थान दिया जाए। इससे आपके परिवार में पूर्ववत शान्ति स्थापित होगी । पृ०—१४२, १४३ ।

उपन्यास के नायक का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व भी अत्यन्त प्रखर है—उसमें एक

व्यक्तित्व है—"माला, शीला, वसन्ता तीनों मेरे लिए समस्याएँ थी। स्नेह, प्रेम औ सामाजिकता के बन्धनों में मैं जकड़ा हुआ था। मेरे हृदय सागर में संघर्ष की उत्ता तरंगें उठती, हृदय के तटों से टकराकर, पछाड़ खाकर लौट जातीं। भावों का केन्द्र न होता। इन सब धक्कों को खाते हुए भी मुझे अपना कर्त्तव्य करना था।" पृ०—६८।

इस प्रकार यह उपन्यास सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक धरातल पर अपनी स्थिति बनाता है और संघर्षशील एवं निर्णयात्मक दृष्टि सम्पन्न पात्रों के प्रभावश व्यक्तित्व प्रस्तुत करता है।





बैरिस्टर

"बैरिस्टर" श्री यालशौरि रेड्डी का सन् १९६७ में रचित मौलिक सामाजिक उपन्यास है। "इस सामाजिक उपन्यास में मानव मन के संस्कारों और सहज इच्छाओं के संघर्ष को मूर्त रूप दिया गया है। इसमें स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का अच्छा चित्रण हुआ है। उपन्यास मे आन्ध्र के एक परिवार की कथा है जो अपने आंचल में आंसू और मुस्कान, लालसा और अनासक्ति, स्वार्थ और त्याग तथा ईर्ष्या और स्नेह की बहुरंगी भावनाएँ समेटे हुए हैं।" फ्लेप।

इस उपन्यास का कथानक अपनी सम्पूर्णता में त्रिकोणात्मक है। एक तरफ तथाकथित बेमेल विवाह-बहुविवाह और झूठी सभ्यता के प्रदर्शन और उसके दुष्परिणाम हैं, दूसरी ओर इकतरफा सपत्नीक ईर्ष्या और स्वार्थवृत्ति के अनेक रूप हैं और तीसरी तरफ बाल मनोविज्ञान का भव्य चित्रण है। नायक सुधाकर का बहुरंगी व्यक्तित्व एक स्वतन्त्र कथावृत्त तैयार करता है। इसमे उसकी बैरिस्टरी सामाजिक एवं व्यावसायिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक जीवन, यौन सम्बन्ध, अन्तर्द्वन्द्व एवं अन्ततः प्रथम पत्नी अनुसूया मे भारतीय नारी की सम्पूर्णता का साक्षात्कार है। अनुसूया के पिता महेन्द्रबाबू, सुधाकर के बड़े भाई दिवाकर, मनमोहिनी के पिता सुरेन्द्रनाथ और नौकर नौकरानियों की भी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण एवं सादयपरक भूमिका है।

यह उपन्यास अपनी भूमिका मे और विस्तार में एक चरित्र प्रधान उपन्यास है। एक आभिजात्य सम्पन्न, सुशिक्षित एवं पाश्चात्य सभ्यता में रंगे हुए नवयुवक की अनेक वैयक्तिक एवं पारिवारिक सीमाएँ और विशेषताएँ इस कृति में चित्रित है।

उपन्यास का मूल कथानक संक्षेप मे इस प्रकार है—सुधाकर एक सामान्य मध्यवर्गीय परिवार का युवक है। वह सुन्दर, स्वस्थ एवं प्रतिभा सम्पन्न युवक है। उसके ज्येष्ठ भ्राता दिवाकर अत्यन्त शालीन एवं कर्मठ गृहस्थ हैं। महेन्द्र बाबू समीपवर्ती गाँव के एक अत्यन्त सम्पन्न एवं उदार जमीदार है। उनकी एक योग्य एवं सुन्दर कथा है—अनसूया। महेन्द्र बाबू ने सुधाकर के स्वभाव और गुणो को देखकर उसे बैरिस्टी पढने के लिए विदेश अपने पूरे खर्चे पर भेजा। मन मे उसे अपना दामाद बनाने का पवित्र भाव उनके मन मे था। आज सुधाकर बैरिस्टर बनकर लौटा है। महेन्द्र बाबू के सहयोग से गाँव मे उसका भव्य स्वागत हुआ।

सुधाकर के विवाह की बात शुरू हुई। दिवाकर के अनेक बार समझाने और दबाव डालने पर सुधाकर ने विवश होकर अनसूया से विवाह कर लिया। घर भर मे खुशी की लहर छा गयी। कुछ समय बाद सुधाकर के जीवन मे उनके ज्येष्ठ मित्र

सुरेन्द्रनाथ की सुशिक्षित, सभ्य, आधुनिक और मधुर बेटी आयी। उससे रागात्मक सम्बन्ध इतना बढ़ा कि सुधाकर को अपनी विवाहिता पत्नी के प्रति विरक्ति होने लगी और अन्ततः मन मोहिनी से भी विवाह कर लिया। धीरे-धीरे सुधाकर का पूरा जीवन नयी पत्नी के साथ रंगरेलियों में व्यस्त हो गया, अनसूया की पूरी उपेक्षा होने लगी। मनमोहिनी अनसूया के एक मात्र पुत्र से भी ईर्ष्या करने लगी उसे तरह-तरह से यातना देने लगी। मनमोहिनी भी दो बेटियो की माँ बन गयी। बच्चो को पारस्परिक स्नेह से मिलने-जुलने से मनमोहिनी बहुत क्रुद्ध होती थी और अनेक बार उसने अनिल को बुरी तरह पीटा और भूखा भी रखा। वह खर्चीली बेहद थी। घर पर अपार कर्जा चढ़ गया। सुधाकर तंग आ गये। सुधाकर की वकालत भी पूरी तरह साथ न दे पाती थी। मनमोहिनी एक तरफ घर पर पूरा अधिकार चाहती थी और दूसरी तरफ घर की बिल्कुल चिन्ता न कर वह सामाजिक कार्यों में व्यस्त हो गयी।

अनसूया का स्वभाव अत्यन्त सात्विक था। वह अत्यन्त उदार एवं सहनशील थी। पति के प्रति भी उसने कभी सेवा एवं आदर भाव में कमी नही की। प्रकृति की विचित्रता देखिये मनमोहिनी की बेटियाँ अपनी माँ से भी अधिक अपनी ताई को चाहती थी। अन्त मे छोटी बेटी के प्राणों की रक्षा भी ताई-अनसूया के आने पर ही हुई। अन्ततः अनसूया के त्याग, उदारभाव, सहिष्णुता, पति सेवा और सच्चरित्रता की विजय हुई। मनमोहिनी और सुधाकर ने अपने आप को बहुत धिक्कृत किया। पुनः समस्त परिवार एक सुसंगठित एवं मैत्रीपूर्ण आदर्श परिवार बन गया।

समस्त कथानक भारतीय नारी की गरिमा, निष्ठा और स्वार्थत्याग की कहानी है। कोरी सभ्यता शिक्षा और ओढ़ी हुई सभ्यता एक सरल, उदार, पतिव्रता एवं त्यागमयी भारतीय नारी के सामने अन्ततः घुटने टेकती है। व्यक्तित्व के भीतरी सांस्कृतिक गठन के अभाव में बाह्य विद्या, सभ्यता एवं व्यवहार बहुत देर तक नहीं ठहर सकते।

यह उपन्यास चरित्र प्रधान कृति है, अतः चरित्रों के अध्ययन के अभाव मे उसकी पूर्णता और निजता से साक्षात्कार नहीं किया जा सकता। इस कृति मे नायक तो बैरिस्टर सुधाकर है ही, परन्तु उसके व्यक्तित्व के विकास और ह्रास में अनसूया, मनमोहिनी, दिवाकर, महेन्द्रनाथ एवं सुरेन्द्रनाथ की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह परिस्थिति और आत्म निर्णय के मध्य अनेक बार डूबता-उभरता है। आइये उससे साक्षात्कार करें—

सुधाकर

सुधाकर प्रस्तुत उपन्यास का नायक है। इस नायक का व्यक्तित्व भाव तरंग गामी अधिक है और तर्क एवं वास्तविकता के प्रति वह प्रायः सजग नही रहता।

समय-समय वह अपनी भूल एवं भावुक निर्णयात्मकता पर विचार करता है पर प्रायः अपनी वासना प्रधान एवं तथाकथित आधुनिकतावादी प्रवृत्ति का शिकार होता चला जाता है। रोल्ड गोल्ड और गोल्ड में वह फर्क नहीं कर पाता और ऊपरी चमक के वशीभूत होकर धीरे-धीरे स्वयं को एक टाइप बना लेता है। परन्तु वह अन्ततः जागता है। मनमोहिनी भी जागती है।

सुधाकर मेधावी है। उसने अपने परिश्रम और प्रतिभा से बैरिस्टरी पास की। उसने अपनी मेधा और तर्कशक्ति से अद्‌भुत सफलता भी प्राप्त की। वह प्रायः सभी मुकदमे जीतता रहा। उसके नाम से ही न्यायालय में एक विजय की सनसनी फैल जाती थी। "चित्तूर में सुधाकर ही सबसे मशहूर बैरिस्टर थे। उनकी प्रैक्टिस खूब चलती थी। उनकी धाक अदालतों तथा मुवक्किलों पर ऐसी जमी थी कि उनके प्रभाव को सब मानते थे, बड़े-बड़े मुकदमे प्रायः उन्हीं के पास खिच-खिचकर आते थे। धन की वृद्धि के साथ उनका यश भी फैल रहा था। जज और वकील भी सुधाकर के वाक्-चातुर्य और दलीलों पर मुग्ध थे। अदालत में जब वे पैरवी करने लगते तब वकील ही नहीं, दर्शक भी मन्त्रमुग्ध होकर सुनते थे। लोग कहते थे कि यह कला सुधाकर को भगवान् की अनुपम देन है।

अपने पेशे में प्रवीण होते हुए भी सुधाकर अभिमानी न थे।" पृ० १९। पत्नी के प्रति उपेक्षा भाव एवं तिरस्कार की भावना भी सुधाकर में विद्यमान थी। अनसूया विशुद्ध भारतीय जीवन मूल्यों की कुलवधू थी। उसकी पति भक्ति, धर्मसाधना, निर्धनों को दान दक्षिणा और पति के साथ क्लब आदि में न जाना और नृत्य गान करके मांसल भावों और वासना को न जगाना सुधाकर को पसंद न था। वह उसे असभ्य मानता था।" सुधाकर में भावों की गहराई नहीं, फिसलन थी। वह एक आवेगपूर्ण झरने के समान थे जो उछल कूदकर समुद्र की ओर बहता है। अनसूया शान्त एवं स्थिर अबुधि के समान थी, इसलिये उन दोनों के विचारों में निकटता नहीं आई।" अनसूया में सौन्दर्य, यौवन, पतिनिष्ठा एवं कुलाभिमान था, फिर भी सुधाकर उसे ग्रामीण, अयोग्य एवं बेमेल मानकर घोर उपेक्षा करते ही रहे।

वासनालोलुप—सुधाकर में पाश्चात्य सभ्यता की अंधी नकल के साथ वासना लोलुपता की मात्रा अति पर थी। इसी बीजभूत प्रवृत्ति के फलस्वरूप वह जिस दिन से मनमोहिनी के सम्पर्क में आया, उसके वशीभूत होता ही चला गया। "मनमोहिनी की इस मधुर वाणी ने सुधाकर के हृदय की वीणा के तारों को झनझना दिया।" नवयौवना, रूपवती, कन्या, शराब के नशे की तीव्रता और सुहावनी प्रकृति ने सुधाकर के चित्त को विकल कर दिया। अब उसकी वाणी और एकान्त ने उन्हें और भी विकल कर दिया।" पृ० ३०। इसी प्रवृत्ति का और भी गहरा रंग यह है—"सुधाकर की आँखों में न मालूम कौन सी ऐसी मादकता थी जो उसको खींचे

थी। मनमोहिनी के शरीर के तार-तार बज रहे थे। मौका पाकर सुधाकर ने मनमोहिनी का बायाँ हाथ पकड़ा और उसे अपने निकट खींच लिया''' सुधाकर ने झट से छलांग मारकर दरवाजा बन्द कर दिया और मनमोहिनी को अपनी दृढ़ बाँहों में कस लिया। थोड़ी देर के बाद दोनों मधुर अनुभूतियों में विचरने लगे।

धीरे-धीरे अन्ततः सुधाकर और मनमोहिनी का विवाह हो गया। सुधाकर ने अपनी प्रथम पत्नी अनसूया से इसकी अनुमति भी ले ली। बस धीरे धीरे सुधाकर का जीवन मनमोहिनी के साथ ही बीतने लगा और अनसूया की पूरी उपेक्षा होने लगी।

अन्त भला सो भला—

मनमोहिनी दो सन्तानों की माँ बन चुकी थी, वह सामाजिक सभाओं और महिला क्लबों में भी पर्याप्त व्यस्त रहती थी और उसकी अलंकार प्रियता और फिजूल खर्ची ने सुधाकर पर भारी उधारी भी चढ़ा दी थी। इन सभी कारणों से उसके प्रति सुधाकर के मन से उसका नशा उतर चुका था। उधर धीरे-धीरे अनसूया का त्याग, उदारता, सेवा और प्रेम सुधाकर के प्रति कभी कम न हुआ। अनसूया ने कभी उसके प्रति अन्यथा न सोचा। इससे अन्ततः सुधाकर के मन में पुनः अनसूया के प्रति आदरभाव एवं स्नेह की तरंगें प्रवाहित हो उठीं। परिवार में सुख-शांति फिर आ गयी।

अनसूया

श्री बालशौरि रेड्डी में नारी हृदय की समग्र शालीनता विद्यमान है। सरलता, कोमलता, पारिवारिक सौहार्द, सहनशीलता, त्यागभावना और पति के प्रति प्रत्येक परिस्थिति में पूर्ण समर्पित भाव आदि गुणों का रेड्डी जी के नारी पात्रों में सहज एवं भव्य अवतरण हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में अनसूया का चरित्र उक्त कसौटी पर पूर्णतया खरा उतरा है। अनसूया इसमें विश्वास करती है कि नर-नारी में अच्छाई है, भले ही उसे प्रकट होने में देर लगे। अनसूया ने अपने पति सुधाकर एवं मनमोहिनी को अन्ततः उनकी पवित्रता एवं सदाशयता के साथ प्रकट कर ही दिया। अनसूया जीवन के यथार्थ से धैर्यपूर्वक संघर्ष करती है, वह अपनी शालीनता को बेदाग रखती है और अन्ततः उसका यथार्थ आदर्श की ऊँचाई तक पहुँचता है। इस आदर्श की विशेषता यह है कि यह आकाश-कुसुम न होकर अत्यन्त सहज एवं ग्राह्य है। अनसूया के चरित्र द्वारा एक यही बात उभर कर यह आयी है कि भारतीय नारी में भले ही उच्च शिक्षा की कमी हो, वह अपने बुद्धिबल, सहृदयता एवं कर्मनिष्ठा के द्वारा अपनी गरिमा स्थापित कर सकती है। आखिरकार विद्या एक सम्पत्ति है और श्रद्धा एवं सहृदयता गुण है। विद्या बाह्य होता है और गुण आन्तरिक।

समय-समय वह अपनी भूल एवं भावुक निर्णयात्मकता पर विचार करता है पर प्रा अपनी वासना प्रधान एवं तथाकथित आधुनिकतावादी प्रवृत्ति का शिकार होता च जाता है। रोल्ड गोल्ड और गोल्ड मे वह फर्क नहीं कर पाता और ऊपरी चमक वशीभूत होकर धीरे-धीरे स्वयं को एक टाइप बना लेता है। परन्तु वह अन्त जागता है। मनमोहिनी भी जागती है।

सुधाकर मेधावी है। उसने अपने परिश्रम और प्रतिभा से बैरिस्टरी पास की उसने अपनी मेधा और तर्कशक्ति से अद्भुत सफलता भी प्राप्त की। वह प्रायः स मुकदमे जीतता रहा। उसके नाम से ही न्यायालय मे एक विजय की सनसनी जाती थी। "चित्तूर में सुधाकर ही सबसे मशहूर बैरिस्टर थे। उनकी प्रैक्टिस चलती थी। उनकी धाक अदालतों तथा मुवक्किलों पर ऐसी जमी थी कि उ प्रभाव को सब मानते थे, बड़े-बड़े मुकदमे प्रायः उन्हीं के पास खिंच-खिंचकर थे। धन की वृद्धि के साथ उनका यश भी फैल रहा था। जज और वकील भी सुधा के वाक्-चातुर्य और दलीलों पर मुग्ध थे। अदालत में जब वे पैरवी करने ल तब वकील ही नही, दर्शक भी मन्त्रमुग्ध होकर सुनते थे। लोग कहते थे कि कला सुधाकर को भगवान् की अनुपम देन है।

अपने पेशे में प्रवीण होते हुए भी सुधाकर अभिमानी न थे।" पृ० १६। प के प्रति उपेक्षा भाव एवं तिरस्कार की भावना भी सुधाकर मे विद्यमान थी। अन विशुद्ध भारतीय जीवन मूल्यो की कुलवधू थी। उसकी पति भक्ति, धर्मसाधना, निर्ध दान दक्षिणा और पति के साथ क्लब आदि मे न जाना और नृत्य गान करके म भावो और वासना को न जगाना सुधाकर को पसंद न था। वह उसे असभ्य मा था।" सुधाकर मे भावो की गहराई नही, फिसलन थी। वह एक आवेगपूर्ण झर समान थे जो उछल कूदकर समुद्र की ओर बहता है। अनसूया शान्त एवं स्थिर अ के समान थी, इसलिये उन दोनों के विचारों में निकटता नहीं आई।" अनसूय सौन्दर्य, यौवन, पतिनिष्ठा एवं कुलाभिमान था, फिर भी सुधाकर उसे ग्रामीण, अ एवं बेमेल मानकर घोर उपेक्षा करते ही रहे।

वासनालोलुप—सुधाकर मे पाश्चात्य सभ्यता की अंधी नकल के साथ वा लोलुपता की मात्रा अति पर थी। इसी बीजभूत प्रवृत्ति के फलस्वरूप वह जिस से मनमोहिनी के सम्पर्क मे आया, उसके वशीभूत होता ही चला गया। "मनमो की इस मधुर वाणी ने सुधाकर के हृदय की वीणा के तारों को झनझना दिया नवयौवना, रूपवती, कन्या, शराब के नशे की तीव्रता और सुहावनी प्रकृति ने कर के चित्त को विकल कर दिया। अब उसकी वाणी और एकान्त ने उन्हें भी विकल कर दिया।" पृ० ३०। इसी प्रवृत्ति का और भी गहरा रंग यह "सुधाकर की आँखों मे न मालूम कौन सी ऐसी मादकता थी जो उसको खींचे

थी। मनमोहिनी के शरीर के तार-तार बज रहे थे। मौका पाकर सुधाकर ने मनमोहिनी का बायाँ हाथ पकड़ा और उसे अपने निकट खींच लिया''' सुधाकर ने झट से छलाँग मारकर दरवाजा बन्द कर दिया और मनमोहिनी को अपनी दृढ़ बाँहों में कस लिया। थोड़ी देर के बाद दोनों मधुर अनुभूतियों में विचरने लगे।

धीरे-धीरे अन्ततः सुधाकर और मनमोहिनी का विवाह हो गया। सुधाकर ने अपनी प्रथम पत्नी अनसूया से इसकी अनुमति भी ले ली। बस धीरे धीरे सुधाकर का जीवन मनमोहिनी के साथ ही बीतने लगा और अनसूया की पूरी उपेक्षा होने लगी।

अन्त भला सो भला—

मनमोहिनी दो सन्तानों की माँ बन चुकी थी, वह सामाजिक सभाओं और महिला क्लबों में भी पर्याप्त व्यस्त रहती थी और उसकी अलंकार प्रियता और फिजूल खर्ची ने सुधाकर पर भारी उधारी भी चढ़ा दी थी। इन सभी कारणों से उसके प्रति सुधाकर के मन से उसका नशा उतर चुका था। उधर धीरे-धीरे अनसूया का त्याग, उदारता, सेवा और प्रेम सुधाकर के प्रति कभी कम न हुआ। अनसूया ने कभी उसके प्रति अन्यथा न सोचा। इससे अन्ततः सुधाकर के मन में पुनः अनसूया के प्रति आदरभाव एवं स्नेह की तरंगें प्रवाहित हो उठीं। परिवार मे सुख-शांति फिर आ गयी।

अनसूया

श्री बालशौरि रेड्डी में नारी हृदय की समग्र शालीनता विद्यमान है। सरलता, कोमलता, पारिवारिक सौहार्द, सहनशीलता, त्यागभावना और पति के प्रति प्रत्येक परिस्थिति में पूर्ण समर्पित भाव आदि गुणों का रेड्डी जी के नारी पात्रो में सहज एवं भव्य अवतरण हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास मे अनसूया का चरित्र उक्त कसौटी पर पूर्णतया खरा उतरा है। अनसूया इसमे विश्वास करती है कि नर-नारी में अच्छाई है, भले ही उसे प्रकट होने में देर लगे। अनसूया ने अपने पति सुधाकर एवं मनमोहिनी को अन्ततः उनकी पवित्रता एवं सदाशयता के साथ प्रकट कर ही दिया। अनसूया जीवन के यथार्थ से धैर्यपूर्वक संघर्ष करती है, वह अपनी शालीनता को बेदाग रखती है और अन्ततः उसका यथार्थ आदर्श की ऊँचाई तक पहुँचता है। इस आदर्श की विशेषता यह है कि यह आकाश-कुसुम न होकर अत्यन्त सहज एवं ग्राह्य है। अनसूया के चरित्र द्वारा एक बड़ी बात उभर कर यह आयी है कि भारतीय नारी में भले ही उच्च शिक्षा की कमी हो, वह अपने बुद्धिबल, सहृदयता एवं कर्मनिष्ठा के द्वारा अपनी गरिमा स्थापित कर सकती है। आखिरकार विद्या एक सम्पत्ति है और श्रद्धा एवं सहृदयता गुण है। विद्या बाह्य होता है और गुण आन्तरिक।

अनसूया महेन्द्र बाबू की सुपुत्री है। वह सुशील, सुन्दर एवं रचनात्मक व्यक्तित्व सम्पन्न महिला है। उसकी शिक्षा केवल पांचवीं कक्षा तक ही हुई है, पर वह अपने सद्गुणों से शिक्षित एवं सभ्य महिलाओं में भी समाहित होती है। महेन्द्र बाबू ने सुधाकर को अपनी बेटी के लिये पसन्द किया और उसकी बैरिस्टरी की पढ़ाई में पूरी आर्थिक सहायता की। सुधाकर की इच्छा के विरुद्ध उसके बड़े भाई दिवाकर के कारण अनसूया से उसका विवाह धूम-धाम से हो गया। सुधाकर को अनसूया से सब कुछ मिला, पर उसकी वासना किसी मादक नारी की तलाश करती रही और मनमोहिनी उसकी दूसरी पत्नी के रूप में आ ही गयी।

अनसूया धीरे-धीरे पति द्वारा उपेक्षित होने लगी और सपत्नी मनमोहिनी ने तो हर तरह से उस पर हावी होना शुरू कर दिया। अनसूया और उसके नन्हे से पुत्र का जीवन दूभर हो गया। इस विपरीत परिस्थिति में भी उसने अपार सौजन्य धैर्य एवं त्याग का जीवन लिया। पति एवं सौत के प्रति कभी कोई उलाहना या शिकायत या विरोध प्रकट नहीं किया। वह सदा सबके सुख और शुभ की ही चिन्ता करती रही। वह धन, रूप, गुण एवं पद में किसी से कम न थी और उसमें हीन भावना या भय ग्रन्थि ही थी। वह अपनी सहज उदारता में ही अपने आचरण में अमृतत्व संजोती रहती थी।

स्थायी जीवनमूल्य—अनसूया एक आदर्श जीवी भारतीय नारी का प्रतीक है। वह सदा स्वयं के प्रति एवं दूसरों के प्रति अपने कर्त्तव्य का निष्ठापूर्वक पालन करती है। स्वार्थ, त्याग, सेवा, प्रेम एवं सदाशयता के साथ वह सहज जीवन जीती है। "सुधाकर की पत्नी अनसूया साक्षात् भारतीय नारी थी। वह प्रातःकाल ही उठती, पति के चरणों को स्पर्श करके अपने घरेलू काम में लग जाती। अपने पति की सेवा में कोई कमी न होने देती। पृ० २०। "वह जिन आदर्शों पर चलती थी वे उसके जीवन के अभिन्न अंग बन गये थे। उन आदर्शों का पालन करते हुए भी पति के पथ में रुकावट नहीं बनी थी, परन्तु सुधाकर उससे कुछ और चाहते थे।" पृ० २५।

कर्त्तव्यपरायण

अनसूया निष्काम कर्म योग को जीवन में चरितार्थ करती थी। उसमें स्व पर का भाव रंच मात्र भी न था। पति, सौत, सौत की पुत्रियाँ और नौकर-चाकर सबके प्रति उसके मन में यथावश्यक सद्भाव रहता था। वह दूसरों के पक्ष की चिन्ता न करके अपना दायित्व सहर्ष करती रहती थी। विरोधों के बीच सहजता और शांति से रह लेना असाधारण चरित्र से ही सम्भव है। अनसूया आखिर मानती है, वह उम्र भर—प्रायः उम्र भर अपमान और उपेक्षा की यातना सहती रहती।—"पृथ्वी और आकाश जैसे अत्यन्त दूर रहते हुए भी परस्पर आकर्षण के कारण निकट प्रतीत

होते हैं, किन्तु अनसूया और प्रभाकर निकट रहते हुए भी, उस आकर्षण के तत्व को खोकर दूर होते गये। अनसूया के दिल में पति के प्रति अगाध श्रद्धा एवं भक्ति थी और सुधाकर के मन में अनसूया के प्रति कोई निश्चित धारणा न थी। गार्हस्थ्य जीवन को चलाने के लिए उसकी स्थिति परिवार रूपी गाड़ी में जुते एक बेमेल गति वाले बैल के समान थी। इतनी ही विपरीतता अनसूया को मनमोहिनी से मिल रही थी, फिर भी वह अपने रचनात्मक पक्ष को—पारिवारिक स्वभाव को कभी कम न होने देती थी। "अनसूया उस परिवार के साथ अपने जीवन की धारा को सम्बद्ध कर उसके साथ समझौता करने में ही अपना और अन्य लोगों का हित समझने लगी। पृ० ५२। सुधाकर एक दिन सिर दर्द के साथ वे घर लौटे। पता लगते ही अनसूया ने अमृतांजन उनके सर पर मला और फर्श पर बैठकर पैर दबाने लगी।" सुधाकर सोचने लगे कि मनमोहिनी ने कभी पैर क्या, सिर भी नहीं दबाया। इन दोनों नारियों में कितना अन्तर है। पृ० ८१। सुधाकर ने मनमोहिनी के भड़काने पर कई बार अनसूया से डरा धमकाकर सहस्रों रुपये लिए। उसे घर से निकाल देने की धमकी भी दी। अनसूया ने फिर भी उफ् न किया। अनसूया के ही सत्प्रयत्न से मनमोहिनी की बेटी बची। इस घटना से सुधाकर और मनमोहिनी के दिलों की श्यामता पूरी तरह धुल गये और उन दोनों ने बड़ी विनम्र भाव से अनसूया की महानता और सद्भावना को स्वीकार किया। परिवार की सारी बिखराहट समाप्त हो गई और सभी परस्पर के सौहार्द से रहने लगे। अनसूया यथा नाम तथा गुण सिद्ध हुई।

मनमोहिनी—मनमोहिनी का चरित्र आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण से युक्त, वासना एवं प्रदर्शन प्रियता को ही जीवन समझने वाली नारी का चरित्र है। वह विवाह के पूर्व ही वासना पूर्ति कर लेता है। दूसरी पत्नी भी बनती है। अपने सांसारिक सुख और विकास के लिए सुधाकर और अनसूया को एक लम्बे समय तक ठगती रहती है। उसमें व्यक्तिगत स्वार्थ, सन्तान का सुख और छल-कपट की प्रवृत्ति चरम पर है। उसमें मानवीय संवेदना पर्याप्त सुषुप्त है। सपत्नीक ईर्ष्या भी उसमें कम नहीं है। वह सुशिक्षित होकर भी वस्तुतः अशिक्षित है। उसमें सामाजिक यशोलिप्सा भी है। उसे वह भोगती भी है। गरज यह कि मनमोहिनी आधुनिकता और भोग विलास की चकाचौंध में जीने और विश्वास रखने वाली नारी है। वह अधिकार भी चाहती है। "सुधाकर के जीवन में मनमोहिनी विलम्ब से आई, वह भी द्वितीय पत्नी बनकर। लेकिन अब वह पहली पत्नी का पद चाहती थी और सुधाकर पर सम्पूर्ण अधिकार भी।" पृ० ५५। मनमोहिनी व्यक्तिगत एवं पारिवारिक स्तर पर अनेक ग्रन्थियों और दुर्बलताओं से ग्रस्त थी, हां उसने सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। "कभी कभी ऐसा होता है कि व्यक्ति अपने व्यवहार से, मेधा से, विवेक

अनसूया महेन्द्र बाबू की सुपुत्री है। वह सुशील, सुन्दर एवं रचनात्मक व्यक्तित्व सम्पन्न महिला है। उसकी शिक्षा केवल पाँचवी कक्षा तक ही हुई है, पर वह अपने सद्गुणों से शिक्षित एवं सभ्य महिलाओं में भी समाहित होती है। महेन्द्र बाबू ने सुधाकर को अपनी बेटी के लिये पसन्द किया और उसकी बैरिस्टरी की पढ़ाई में पूरी आर्थिक सहायता की। सुधाकर की इच्छा के विरुद्ध उसके बड़े भाई दिवाकर के कारण अनसूया से उसका विवाह धूम-धाम से हो गया। सुधाकर को अनसूया में सब कुछ मिला, पर उसकी वासना किसी मादक नारी की तलाश करती रही और मनमोहिनी उसकी दूसरी पत्नी के रूप में आ ही गयी।

अनसूया धीरे-धीरे पति द्वारा उपेक्षित होने लगी और सपत्नी मनमोहिनी ने तो हर तरह से उस पर हावी होना शुरू कर दिया। अनसूया और उसके नन्हे से पुत्र का जीवन दूभर हो गया। इस विपरीत परिस्थिति में भी उसने अपार सौजन्य धैर्य एवं त्याग का जीवन लिया। पति एवं सौत के प्रति कभी कोई उलाहना या शिकायत या विरोध प्रकट नहीं किया। वह सदा सबके सुख और शुभ की ही चिन्ता करती रही। वह धन, रूप, गुण एवं पद में किसी से कम न थी और उसमें हीन भावना या भय ग्रन्थि ही थी। वह अपनी सहज उदारता से ही अपने आचरण में अमृतत्व संजोती रहती थी।

स्थायी जीवनमूल्य—अनसूया एक आदर्श जीवी भारतीय नारी का प्रतीक है। वह सदा स्वयं के प्रति एवं दूसरों के प्रति अपने कर्तव्य का निष्ठापूर्वक पालन करती है। स्वार्थ, त्याग, सेवा, प्रेम एवं सदाशयता के साथ वह सहज जीवन जीती है। "सुधाकर की पत्नी अनसूया साक्षात् भारतीय नारी थी। वह, प्रातःकाल ही उठती, पति के चरणों को स्पर्श करके अपने घरेलू काम में लग जाती। अपने पति की सेवा में कोई कमी न होने देती। पृ० २०। "वह जिन आदर्शों पर चलती थी वे उसके जीवन के अभिन्न अंग बन गये थे। उन आदर्शों का पालन करते हुए भी पति के पथ में रुकावट नहीं बनी थी, परन्तु सुधाकर उससे कुछ और चाहते थे।" पृ० २५।

कर्त्तव्यपरायण

अनसूया निष्काम कर्म योग को जीवन में चरितार्थ करती थी। उसमें स्व पर का भाव रंच मात्र भी न था। पति, सौत, सौत की पुत्रियाँ और नौकर-चाकर सबके प्रति उसके मन में यथावश्यक सद्भाव रहता था। वह दूसरों के पक्ष की चिन्ता न करके अपना दायित्व सहर्ष करती रहती थी। विरोधों के बीच सहजता और शांति से रह लेना असाधारण चरित्र से ही सम्भव है। अनसूया आखिर मानती है, वह उम्र भर—प्रायः उम्र भर अपमान और उपेक्षा को यातना सहती रहती।—"पृथ्वी और आकाश जैसे अत्यन्त दूर रहते हुए भी परस्पर आकर्षण के कारण निकट प्रतीत

होते हैं, किन्तु अनसूया और प्रभाकर निकट रहते हुए भी, उस आकर्षण के तत्व को खोकर दूर होते गये। अनसूया के दिल में पति के प्रति अगाध श्रद्धा एवं भक्ति थी और सुधाकर के मन में अनसूया के प्रति कोई निश्चित धारणा न थी। गार्हस्थ्य जीवन को चलाने के लिए उसकी स्थिति परिवार रूपी गाड़ी में जुते एक बेमेल गति वाले बैल के समान थी। इतनी ही विपरीतता अनसूया को मनमोहिनी से मिल रही थी, फिर भी वह अपने रचनात्मक पक्ष को—पारिवारिक स्वभाव को कभी कम न होने देती थी। "अनसूया उस परिवार के साथ अपने जीवन की धारा को सम्बद्ध कर उसके साथ समझौता करने में ही अपना और अन्य लोगों का हित समझने लगी। पृ० ५२। सुधाकर एक दिन सिर दर्द के साथ वे घर लौटे। पता लगते ही अनसूया ने अमृतांजन उनके सर पर मला और फर्श पर बैठकर पैर दबाने लगी।" सुधाकर सोचने लगे कि मनमोहिनी ने कभी पैर क्या, सिर भी नहीं दबाया। इन दोनों नारियों में कितना अन्तर है। पृ० ८१। सुधाकर ने मनमोहिनी के भड़काने पर कई बार अनसूया से डरा धमकाकर सहस्रों रुपये लिए। उसे घर से निकाल देने की धमकी भी दी। अनसूया ने फिर भी उफ् न किया। अनसूया के ही सत्प्रयत्न से मनमोहिनी की बेटी बची। इस घटना से सुधाकर और मनमोहिनी के दिलों की श्यामता पूरी तरह धुल गये और उन दोनों ने बड़ी विनम्र भाव से अनसूया की महानता और सद्भावना को स्वीकार किया। परिवार की सारी बिखराहट समाप्त हो गई और सभी परस्पर के सौहार्द से रहने लगे। अनसूया यथा नाम तथा गुण सिद्ध हुई।

मनमोहिनी—मनमोहिनी का चरित्र आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण से युक्त, वासना एवं प्रदर्शन प्रियता को ही जीवन समझने वाली नारी का चरित्र है। वह विवाह के पूर्व ही वासना पूर्ति कर लेता है। दूसरी पत्नी भी बनती है। अपने सांसारिक सुख और विकास के लिए सुधाकर और अनसूया को एक लम्बे समय तक ठगती रहती है। उसमें व्यक्तिगत स्वार्थ, सन्तान का सुख और छल-कपट की प्रवृत्ति चरम पर है। उसमे मानवीय संवेदना पर्याप्त सुषुप्त है। सपत्नीक ईर्ष्या भी उसमें कम नहीं है। वह सुशिक्षित होकर भी वस्तुतः अशिक्षित है। उसमें सामाजिक यशोलिप्सा भी है। उसे वह भोगती भी है। गरज यह कि मनमोहिनी आधुनिकता और भोग विलास की चकाचौंध में जीने और विश्वास रखने वाली नारी है। वह अधिकार भी चाहती है। "सुधाकर के जीवन में मनमोहिनी विलम्ब से आई, वह भी द्वितीय पत्नी बनकर। लेकिन अब वह पहली पत्नी का पद चाहती थी और सुधाकर पर सम्पूर्ण अधिकार भी।" पृ० ५५। मनमोहिनी व्यक्तिगत एवं पारिवारिक स्तर पर अनेक ग्रन्थियों और दुर्बलताओं से ग्रस्त थी, हाँ उसने सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। "कभी कभी ऐसा होता है कि व्यक्ति अपने व्यवहार से, मेधा से, विवेक

और विज्ञान से भी दूसरों के लिए प्रकाश देता है, किन्तु दीपक की भाँति स्वयं अन्धकार में ही रहता है।'' पृ० ५७। उपन्यासकार ने मनमोहिनी के चरित्र की सभी दुर्बलताएँ उद्घाटित करके उसके अन्तस्तल में छिपी नारी भावना को यथितार्थ के रूप में प्रकट किया है। यह नारी मूलतः बुरी नहीं है, वह संगति और पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से स्वयं को भ्रष्ट कर लेती है, पर अन्ततः वह प्रायश्चित करती है और अपनी भव्यात्मा से साक्षात्कार करती है।

इस उपन्यास की भाषा प्रायः विषय, पात्र एवं परिस्थिति के अनुकूल है। भाषा प्रांजल एवं व्याकरण सम्मत है। यथावसर उर्दू के सहज शब्द एवं मुहावरे भी आ गये हैं। शैली प्रायः व्यासप्रधान है। उसमें आवश्यक प्रवाह एवं शक्ति है। कभी कभी लेखक पात्रों के कृत्यों पर निष्कर्ष देकर बात को एक विराम एवं स्पष्टता देता है। ''इतने में टेलीफोन की घंटी बजने लगी। सुरेन्द्रनाथ की पुत्री मनमोहिनी ने टेलीफोन का चोगा हाथ में लिया, समाचार सुनकर पिता को बुलाया। यह सामान्य बोलचाल की भाषा है। जब लेखक अपना मन्तव्य प्रकट करता है तो भाषा चिन्तन प्रधान एवं गम्भीर हो जाती है—''अनुकूल वातावरण मिलने पर मनुष्य की सद्भावनाएँ जहाँ विकसित हो उठती हैं वहाँ बुरी भावनाएँ उभरकर मनुष्य को गिराती हैं। जहाँ स्वार्थ और शारीरिक भोग का प्रश्न उठता है वहाँ मनुष्य बहुत जल्दी उनकी ओर खिंच जाता है।'' पृ० ३१।

प्रकृति वर्णन, साज सज्जा, एकान्त स्थल एवं दृश्यविधान तथा घटना सृष्टि के द्वारा समुचित वातावरण की भी आवश्यकतानुसार सृष्टि इस कृति में है। आन्ध्र प्रदेश के पर्वत्योहार एवं रीति-रिवाज उपन्यास मे भूमि-गन्ध पूरी तरह भरते रहे हैं।

निष्कर्षतः बैरिस्टर एक चरित्र प्रधान मौलिक सामाजिक उपन्यास के रूप में सफल कृति है।



प्रकाश और परछाई

"प्रकाश और परछाई" श्री बालशौरि रेड्डी का सन् १६६८ में रचित आन्ध्र प्रदेश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित एक सशक्त लघु उपन्यास है। यह लेखक का छठा मौलिक उपन्यास (७२ पृष्ठों का) है। इसके सम्बन्ध में लेखक का वक्तव्य आलोक रश्मि का काम करता है। "आन्ध्र के इतिहास में स्वर्णयुग नाम से विख्यात सम्राट कृष्णदेव राय का समय राजनैतिक प्रभाव की दृष्टि से ही नही, अपितु कला, वाड्मय एवं समृद्धि की दृष्टि से भी अपना अद्भुत महत्त्व रखता है।

उक्त महान् साम्राज्य के सूत्र संचालक महामंत्री तिम्मरुसु थे। महामात्य तिम्मरुसु ने विजयनगर साम्राज्य की सुरक्षा, विकास एवं उसे वैभवशाली बनाने में अपनी स्पृहणीय बौद्धिक क्षमता तथा कार्यदक्षता का जो परिचय दिया है, उसकी प्रस्तुति नही हो सकती। भारत के स्वर्णिम इतिहास में चाणक्य की समता कर सकने वाली यदि कोई मेधावी इतिहास के पन्नों मे अपने प्रभाव को फैलाए हुए है, तो वे महामात्य तिम्मरुसु ही हैं।"

यह उपन्यास कुल सात परिच्छेदों मे विभाजित है। वे इस प्रकार हैं—

१. प्रकाश और परछाई (९-४८)
२. कृष्णदेव राय का राज्याभिषेक (४४-४९)
३ भुवन विजय (५०-५३)
४. दिग्विजय (५४-६६)
५ तिम्मरुसु की विजय (६७-६८)
६ .शासन व्यवस्था और सुधार (६९-७१)
७. अन्तिम दशा (७२-८२)

यह उपन्यास एक आन्ध्रप्रदेशीय ग्रामीण बालक के सम्पूर्ण देदीप्यमान जीवन की यशोगाथा है। इस बालक का ग्रामीण नाम तिम्मना था और बाद में तिम्मरुसु नाम से वह विख्यात हुआ। अपनी सम्पूर्णता में यह कथा सम्राट कृष्णदेव राय के साम्राज्य विस्तार और यशोगाथाओं को लिए हुए है। परन्तु इस सबमें केन्द्रीभूत (प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से) महामन्त्री तिम्मरुसु विद्यमान है। यद्यपि परम्परा के अनुसार फल-प्राप्ति और प्रत्यक्ष क्रियाकलाप के आधार पर नायकत्व सम्राट् कृष्णदेव को ही प्राप्त होना चाहिए, किन्तु कृष्णदेव राय जो कुछ भी बने, उसमें बहुत बड़ा हाथ तिम्मरुसु का ही रहा। तिम्मरुसु को सदा अप्पाजी (पिता जी) रूप में ही कृष्णदेव राय मानते रहे। सम्पूर्ण कथावृत्त अन्ततः किस परिणति को प्राप्त करता है और क्यों, इसको कथावृत्त के संक्षिप्त साक्षात्कार से ही समझा जा सकता है।

तिम्मना नामक एक ग्रामीण बालक एक दिन चन्द्रगिरि के समीपवर्ती जंगल में एक वृक्ष की छाया में सो रहा था। एक काला नाग उस पर अपने फण से छाया किये हुए था। इस दृश्य को देख कर सिद्ध-योगी वहाँ पहुँचा। नाग तुरन्त चला गया सिद्ध योगी ने तिम्मना को जगाया और स्नेहपूर्वक उसे बताया कि उसका भविष्य बहुत उज्ज्वल है। वह महान् बनेगा और एक महान् साम्राज्य का संचालक बनेगा।

बालक तिम्मना आश्चर्यचकित होकर अपने भाई गोविन्द और मित्रों के पास पहुँचा। उन सबसे उसने अपने विषय में की गयी सिद्ध योगी की भविष्यवाणी को सुनाया। सबने उसकी हँसी उड़ायी। परन्तु उसके छोटे भाई गोविन्द ने उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की और उसे पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन भी दिया। दोनों भाइयों ने साहित्य, कला, राजनीति एवं युद्ध विद्या प्राप्त करने का निश्चय किया। स्वाभिमान और लगन के साथ अनेक कठिनाइयों को पार करते हुए वे दोनों अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हुए। एक दिन विजय नगर साम्राज्य 4-5 राजसेवक आचार्य के पास खड़े थे। तिम्मना की अद्भुत बौद्धिक प्रतिभा से वे प्रभावित हुए। तिम्मना की विजय नगर में सभी प्रकार की परीक्षा हुई और वह पूर्णतया योग्य सिद्ध हुआ। छोटी लकीर को बिना मिटाए बड़ी करना और कालीन पर पैर रखे बगैर मंच से मुद्राएँ ले आने की परीक्षाओं में तिम्मना सहज ही उत्तीर्ण हो गया। प्रसन्नतापूर्वक महाराज नरसराय ने तिम्मना को महामन्त्री बनाया और सम्मानित किया। अब तिम्मना को महाराज नरसराय ने तिम्मरसु नाम से अभिहित किया। "तिम्मरसु ने जब महामन्त्री का पद सभाला, तब विजयनगर साम्राज्य बाहरी और भीतरी शत्रुओं से भरा हुआ था। नरसिंह राय ने विरुपाक्ष राय को पदच्युत करके सिंहासन पर अधिकार कर लिया था। नरसिंह राय विरुपाक्ष के यहाँ प्रधान सेनापति थे। नरसिंह राय का सम्राट, बनना विरुपाक्ष राय के रिश्तेदारों को खटक रहा था। उधर कलिंग के राजा और बहमनी सुल्तान भी समय पाकर विजय नगर साम्राज्य को निगलने की सोच रहे थे। सम्राट नरसिंह राय घबराए हुए से थे।" पृ० २१।

महामन्त्री तिम्मरसु ने इस परिस्थिति को पूरी गम्भीरता के साथ समझा और उस पर काबू पाने के लिए अनेक प्रकार के उपाय किये। गुप्तचरों की नियुक्ति, स्वयं वेश बदल कर टोह लगाना, सेना का पुनः संगठन, जनता में सुख-शान्ति की स्थापना, साम्राज्य की भीतरी कलह को रोकना और राजपरिवार के लोगों को दूर स्थानान्तरित कर देना आदि कार्यों द्वारा राज्य को सुस्थिर किया। राजधानी की रक्षा का भार अपने भाई गोविन्द को सौंप दिया। इस प्रकार महामन्त्री तिम्मरसु के सत्प्रयत्नों से राज परिवार और जनता में सुख शान्ति की पुनः प्रतिष्ठा हुई। देश विदेश में भी विजय नगर साम्राज्य का यशोविस्तार हुआ। "सम्राट नरसिंह राय के साथ तिम्मरसु का भी नाम फैला। यह कहना अधिक समीचीन होगा कि सम्राट की अपेक्षा तिम्मरसु का यश ही अधिक फैला।" पृ० २४।

तिम्मराय और नरसराजा के साथ भी महामन्त्री तिम्मरुसु के बहुत अच्छे सम्बन्ध रहे और साम्राज्य चलता रहा।

नरसराजा ने अपना अन्तिम समय निकट जान कर महामन्त्री तिम्मरुसु से कहा कि जैसे भी हो वे उनके (नरसराजा के) बड़े पुत्र को सिंहासन का अधिकारी घोषित करें। महामन्त्री ने विवश होकर नरसिंहदेव राय को सिंहासन पर बैठा दिया। छोटे पुत्र कृष्णदेव राय योग्य थे और महामन्त्री उन्हीं को चाहते भी थे, पर ऐसा उस समय न हो सका।

नरसिंहदेव राय महामन्त्री तिम्मरुसु के प्रति पूर्णतया कृतज्ञ थे, पर शंकालु भी थे। उन्हें डर था कि उनके मरने के बाद महामन्त्री उनके पुत्र को राजा न बनने देंगे। वे कृष्णदेव राय को ही बनायेंगे। अतः एक दिन महामन्त्री से स्पष्ट कहा कि उनका आदेश है कि तुरन्त कृष्णदेव राय की वे आँखें निकलवाकर उसके सामने पेश करें। वे अपने पुत्र के लिए मार्ग निष्कंटक ही छोड़ना चाहते है।

महामन्त्री को उक्त आदेश से गहरा आघात लगा, पर, उचित अवसर न देख, उन्होंने बुद्धिमानी से तुरन्त वह प्रस्ताव मान लिया। न मानने पर तुरन्त महामन्त्री और कृष्णदेव राय दोनों की हत्या की जा सकती थी। महामन्त्री ने बाद में एक बकरे की आँखें निकलवाकर प्रस्तुत कर दी और कह दिया कि ये आँखें कृष्णदेव राय की है। कृष्णदेव राय को अपने छोटे भाई के संरक्षण में गुप्त रूप से दूर रखा। वीर नरसिंह देव राय का देहान्त हो गया।

महामन्त्री तिम्मरुसु ने कृष्णदेव राय को आश्वासन दिया कि वे अवसर पाते ही उन्हें ही सम्राट पद पर अभिषिक्त करेंगे। शीघ्र कृष्णदेव राय सम्राट बन भी गये।

कृष्णदेव राय का विवाह एक वेश्या पुत्री चिन्नम्मा और राजा श्यामल राय की पुत्री तिरुमला देवी से हुआ।

आगे चलकर महामन्त्री की सहायता से कृष्णदेव राय ने अपने राज्य का भरपूर विस्तार किया और अनेक राजाओं और शत्रुओं को पराजित भी किया। वे तिम्मरुसु के हृदय से कृतज्ञ रहे। तिम्मरुसु ने अनेकतः राज्य का सम्मान बढ़ाया और लोकोत्तर स्वामिभक्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया।

कृष्णदेव राय के मन में धीरे-धीरे महामन्त्री की ईमानदारी पर शंका होने लगी। उधर अन्तःपुर में भी ऐसा ही हाल था। वे स्वयं प्रधानमन्त्री का भी काम संभालने लगे। प्रतापरुद्र गजपति की पुत्री भी तिम्मरुसु से ईर्ष्या करती थी। उसके पिता की पराजय और कृष्णदेव राय के साथ बलात् उसका (अन्नपूर्णा देवी का) विवाह—ये दोनों कार्य बलपूर्वक तिम्मरुसु ने ही कराये थे।

कृष्णदेव राय के पुत्र तिरुमल राय को विष देकर अन्नपूर्णा और उसके भाई ने हत्या कर दी। हत्या का पूरा अपराध महामन्त्री पर लगा दिया गया। सम्राट

कृष्णदेव राय ने भी इस अपराध को महामन्त्री का ही माना और उनकी आँखें निकलवा ली।

अन्ततः रहस्योद्घाटन हुआ, कृष्णदेव राय ने अपनी मूर्खता पर घोर पश्चाताप किया, पर तब तक तो महामानव तिम्मरसु के प्राण पखेरू उड़ चुके थे।

इतिहास में इतनी कृतघ्नता और नादानी का यह अपने ढंग का अप्रतिम उदाहरण है।

इस प्रकार इस उपन्यास का कथानक अपनी ऐतिहासिकता में महाप्राण तिम्मरसु की लोमहर्षक जीवन गाथा लिए हुए है। इसमें पराक्रम, युद्ध कौशल, राजभक्ति, त्याग, अविश्वास एवं सपत्नीक ईर्ष्या के अनेक प्रभावक चित्र हैं। महात्मा गाँधी की मृत्यु पर बर्नार्ड शा ने कहा था—

"यही बात महामन्त्री तिम्मरसु पर पूरी तरह घटित होती है।

पात्र एवं चरित्र-चित्रण

कथा संगठन, आस्फालन एवं प्रभावकता और सहज औत्सुक्य के आधार पर यह उपन्यास अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करता है। यह कथानकगत श्रेष्ठता पात्रों के चैतन्यमय एवं ऊर्ध्वगामी व्यक्तित्व पर बहुत अधिक निर्भर करती है। उपन्यास वस्तुतः संघर्षशील मानव के चरित्र का दिग्दर्शक होता है। इस कृति में नर पात्र एवं नारी पात्र अनेक है, परन्तु पुरुष पात्रों का ही इसमें प्राधान्य हैं। सभी नारी पात्र प्रायः उपन्यास का निर्माण नहीं होता, ऐसी एक धारणा सी बन गयी है। इन दो तत्त्वों के बिना भी उपन्यास प्रभावक हो सकता है, इस बात का प्रमाण यह उपन्यास है।

नरसिंह राय, नरसराजा, रानी तिप्पाम्बा, नागांबा, नरसिंहदेव राय वेश्या-पुत्री चिन्नमा, तिरुमला देवी, तिरुमल राय, अन्नपूर्णा देवी और प्रतापरुद्र गजपति आदि अनेक पात्रों की भूमिका इस कृति के महत्त्ववर्धन में है, परन्तु एक सीमित परिवेश में ही। कृष्णदेव राय एवं तिम्मरसु—ये दो चरित्र ही उपन्यास के प्राणाधार हैं। गोविन्द (तिम्मरसु के छोटे भाई) का चरित्र भी महत्त्वपूर्ण है।

कृष्णदेव राय

सम्राट कृष्णदेव राय (१६वीं शती पूर्वार्द्ध) का दक्षिण भारत की राजनीति एवं राज्य व्यवस्था में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है। उनका राज्य काल स्वर्ण युग के रूप में विख्यात हुआ। कृष्णदेव राय सभी प्रकार से योग्य थे, परन्तु उनके पिता ने उन्हें ज्येष्ठ पुत्र न होने के कारण राजा न बनाया। और भी द्रष्टव्य है—"बड़ी रानी तिप्पाम्बा मझली रानी नागाम्बिका से द्वेष करती थी। इसका मुख्य कारण नरसराज का नागाम्बिका के प्रति विशेष अनुराग था। नरस राजा ने नागाम्बिका के पुत्र कृष्णदेव के शिक्षागुरु के रूप में महामन्त्री को नियुक्त किया था। ....तिप्पाम्बा का पुत्र वीर नरसिंह देव राय कृष्णदेव राय से बड़ा था, लेकिन प्रतिभा, वीरता और

गम्भीरता में कृष्णदेव आगे था। महाराजा और महामन्त्री ने कई अवसरों पर कृष्णदेव राय की प्रशंसा भी की थी। अतः तिप्पाम्बा ने कृष्णदेव राय की ही हत्या करने की शपथ ली और अपना इरादा पूरा करने के लिए उसे विष पिलाने की योजना बनायी। महामन्त्री ने कृष्णदेव राय की रक्षा की। अपने छोटे भाई गोविन्द के संरक्षण में ही कृष्णदेव राय के सम्पूर्ण विकास की व्यवस्था कर दी। पृ० ३६।

कृष्णदेव राय के गुणों को प्रामाणिक रूप से समझने के लिए यह उद्धरण महत्त्वपूर्ण है—"कृष्णदेव राय ने गोविन्द के संरक्षण मे भाला और तलवार चलाना, घोड़े पर सवारी करना, धनुर्विद्या आदि सीखा। तिम्मरुसु ने भी विशेष ध्यान देकर कृष्णदेव राय को तेलुगु, कन्नड़, संस्कृत इत्यादि भाषाओं के साथ राजनीति, दण्ड-नीति और राजतन्त्र की रीतियाँ भी सिखवाईं। इस प्रकार कृष्णदेव राय ने बुद्धिबल के साथ शारीरिक बल भी बढाया।

कृष्णदेव राय स्वभाव से भी अत्यन्त विनयी, चरित्रवान् तथा पराक्रमी था। वह महामन्त्री के प्रति बहुत आदरभाव रखता था। उनके उपकारों के कारण कृतज्ञ भी था। उसे महामन्त्री से पिता जैसा स्नेह और वात्सल्य मिला था। इसलिए वह महामन्त्री तिम्मरुसु को अप्पा जी (पिता जी) कहता था और, तिम्मरुसु कृष्णदेव के लिए जीवन भर अप्पा जी ही बने रहे।" पृ० ३६।

कृष्णदेव राय के चरित्र की महानता और नैतिक उच्चता को समझने के लिए उनका अपना ही यह कथन अत्यन्त स्मरणीय है—"अप्पा जी! आपने मेरी विमाता के द्वारा दिए गये विषपान से मेरी रक्षा की। मेरा अन्त करने के लिए जितने प्रयत्न हुए, उन सबको आपने विफल किया। आप जानते है कि साम्राज्य तथा मेरे बडे भाई के प्रति मेरे मन मे किसी भी प्रकार का कुविचार नही है। मेरे भाई यही सोचकर मेरी आँखें निकलवाना चाहते हैं कि मैं उनके पुत्र के साथ अन्याय करूँगा। लेकिन मैं आपको विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि मैं साम्राज्य की कामना नही करूँगा। मैं साधु बन कर चला जाऊँगा। ''' मेरी प्रार्थना आपसे यही है कि आप मेरे नेत्र निकलवाने की अपेक्षा मेरा सिर धड़ से अलग करवा दीजिए। यही आपसे मेरा अन्तिम निवेदन है।

महामन्त्री कृष्णदेव राय के वचन सुनकर गद्गद हो उठे। उसकी पीठ थप-थपाते हुए कहा—"बेटा, मैं तुमको इस महा साम्राज्य का सम्राट बनाना चाहता हूँ। धीरज रखो। पृ० ४३।

उल्लिखित उद्धरणों से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि श्री कृष्णदेव राय के सहज मानवीय गुणों के प्रति महामन्त्री तिम्मरुसु मे अपार आदर एवं वात्सल्य था। तो दूसरी ओर तिम्मरुसु के प्रति कृष्णदेव राय सदा श्रद्धाभाव रखते थे और उन्हें पिता ही कहते थे।

कृष्णदेव राय राजपद के लिए सुयोग्य थे, पर वे कभी स्वार्थी एवं पदलोलुप न थे। वे एक त्यागी एवं सन्तोचित प्रकृति के व्यक्ति थे। उनमें परिवार के षड़यन्त्रकारियों के प्रति बदले की भावना भी न थी।

कृष्णदेव राय का राज्याभिषेक हुआ। धीरे-धीरे राज्य का विस्तार हुआ। प्रजा में सुख शान्ति और समृद्धि आयी। अपार शौर्य और युद्ध कौशल के अनेक ज्वलन्त उदाहरण कृष्णदेव राय ने प्रस्तुत किये। उनका युग स्वर्ण युग के रूप में विख्यात हुआ।

इतने उच्च गुणों के स्वामी होते हुए भी कृष्णदेव राय कान के कच्चे और शंकालु स्वभाव के थे। उनका वेश्या पुत्री-प्रेम भी उनकी बहुत बड़ी दुर्बलता थी। अपने परम हितैषी महामन्त्री की बार-बार परीक्षा लेना और अन्ततः बहकावे में आकर उन्हें हत्यारा मान बैठना और उनकी आँखें निकलवा लेना—एक ऐसा कलंक और अपयश है जिसे इतिहास कभी क्षमा नहीं करेगा। परन्तु बाद में कृष्णदेव राय असलियत जान गये, महामन्त्री की पवित्रता समझ गये और उनसे क्षमा याचना भी की।

निष्कर्षतः कृष्णदेव राय स्वभावतः महान् थे। पौरुष, प्रशासन, सदाशयता और त्याग की साक्षात् मूर्ति थे। नियति ने उन पर अन्ततः अपयश और कृतघ्नता की कालिमा भी अंकित कर दी, परन्तु वे विशुद्ध मानवीय धरातल पर स्तुत्य ही रहेंगे।

"एको हि दोषो गुण सन्निपाते, निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।"

तिम्मना (तिम्मरुसु)

अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में जन्मा, महान् गुणात्मक सम्भावनाओं से युक्त, कर्मठ, स्वाभिमानी, कर्तव्यपरायण, निर्लोभी एवं संघर्षशील व्यक्तित्व से समलंकृत था बालक तिम्मना। आन्ध्र प्रदेश के प्रख्यात चन्द्रगिरि क्षेत्र के एक छोटे से गाँव में इस बालक का जन्म हुआ था। एक छोटा भाई (गोविन्द) भी था। शिक्षा, लालन-पालन आदि से दोनों भाई वंचित थे। साधनहीन एवं निर्धन थे। किसी सन्त की भविष्यवाणी ने तिम्मना में अपार उत्साह, श्रम एवं संकल्प का बीज बो दिया। भविष्यवाणी के अनुरूप तिम्मना ने स्वयं को प्रत्येक दृष्टि से भरपूर तैयार किया। घोर निर्धनता के होने पर भी श्रम, उत्साह और प्रतिभा से विद्या, राजनीति एवं युद्ध कौशल में वह निपुण बना। अपने छोटे भाई को भी तैयार किया। एक समय आया, उसके गुणों की परीक्षा हुई और वह विजय नगर साम्राज्य का महामन्त्री बना। अब तिम्मना का नाम सम्राट ने तिम्मरुसु रख दिया।

महामन्त्री तिम्मरुसु ने राज परिवार के व्यक्तियों को विजय नगर से पृथक् कर दूर-दूर के स्थानों में भेज दिया। पुराने दास-दासियों को हटाया और नये

विश्वास पात्रों को नियुक्त किया। इसी प्रकार सेना का पुनर्गठन किया। व्यापार, कला और नैतिक मूल्यों में अपार वृद्धि की।

"तिम्मरुसु के महामन्त्री बनने के बाद आन्ध्रवासियों का प्रभाव बढ़ने लगा। बल्कि कह सकते हैं कि आन्ध्रवासियों के हाथों में सारा साम्राज्य सुरक्षित हो उठा।

सम्राट् भी तिम्मरुसु के प्रति कृतज्ञ थे। उन्होंने उन पर कभी सन्देह नहीं किया।"

साम्राज्य विस्तार के लिये और शत्रुओं से बदला लेने के लिए तिम्मरुसु ने वर्तमान सैनिक स्थिति और राज्यशक्ति का पूरा अध्ययन किया और हर प्रकार की कमी को पूरा किया। बाद में ही अत्यन्त शक्तिशाली सेना लेकर सर्वतोमुखी विजय प्राप्त करायी।

विजयनगर साम्राज्य के अनेक सम्राटों के महामंत्री के रूप मे तिम्मरुसु रहे। परन्तु कृष्णदेव राय के साथ उनकी रागात्मकता, शक्ति परीक्षा, मेधा-परीक्षा और सम्मान भावना मे आशातीत वृद्धि हुई। तिम्मरुसु ने हर स्तर पर कृष्णदेव राय के हितों की रक्षा की और उनके प्राणों को भी अनेक बार बचाया। अन्ततः उन्हें सम्राट भी बनाया। कृष्णदेव राय भी जीवन भर उन्हें पिता के रूप मे ही मानते रहे।

परंतु दुष्ट नियति को कुछ और ही मंजूर था। कृष्णदेव राय ने धीरे-धीरे तिम्मरुसु पर शंका करना आरम्भ किया, उनकी ईमानदारी की आकस्मिक परीक्षा भी ली। अन्तःपुर मे भी तिम्मरुसु का यशोविस्तार असहनीय हो गया। अन्ततः कृष्णदेव राय के पुत्र को विषपान कराकर अन्तःपुर में हत्या की गयी और तिम्मरुसु पर इस हत्या का पूरा दोष लगाया गया। सम्राट् कृष्णदेव राय ने भी पूरी तरह से निरपराध तिम्मरुसु को हत्यारा माना और अन्ततः उनकी आँखें निकलवा ली। यह था कृतघ्नता का उदाहरण।

जिस महामना तिम्मरुसु ने स्वयं के प्राणों को संकट मे डालकर अनेक बार कृष्णदेव राय के प्राणों की रक्षा की और हर तरह से योग्य बनाया उसी ने अविश्वास और मूर्खता के कारण उस देव तुल्य व्यक्ति के प्राण ले लिए। बाद मे सत्य सामने आया और कृष्णदेव राय ने तिम्मरुसु की पवित्रता पर आँसू भी बहाये, परन्तु यह सब तब व्यर्थ था। मरते समय भी तिम्मरुसु ने कृष्णदेव को आशीर्वाद ही दिया। तिम्मरुसु का पार्थिव अन्त तो उस दिन ही हो गया, परन्तु वे वस्तुतः अपने महान गुणों से अजर-अमर हो गये। वे पूरी तरह चन्दन थे और चन्दन सदा सुगन्ध ही वितीर्ण करता है।

प्रस्तुत उपन्यास मे आवश्यक ऐतिहासिक वातावरण सहज रूप से आयोजित है। उत्सव, रीति-रिवाज, ऋतुवर्णन एवं मानवीय व्यवहार आदि सभी तत्वों का

अपेक्षित एवं प्रभावक समावेश हुआ है। देशकाल प्रतीकात्मक, संकेतात्मक एवं मूल विषय के उद्बोधक एवं प्रभावक तत्त्व के रूप में उपस्थित होना चाहिए और इस कृति में ऐसा ही हुआ है। वातावरण से विषय में विश्वसनीयता की भी सृष्टि हुई है। वातावरण फिर भी दृश्यात्मक कम और वर्णनात्मक अथवा सूचनात्मक अधिक हो गया है, कारण स्पष्ट है कि लेखक मूल विषय को ही अविलम्ब आगे बढ़ाना चाहता है। द्रष्टव्य है—"दोपहर का समय था। कड़ी धूप पृथ्वी को तपा रही थी। चन्द्रगिरि के समीप के जंगल में एक वृक्ष की छाया में एक बालक सो रहा था। ऐसे में सूर्य भगवान अस्ताचल की ओर बढ़ते गये। बालक के मुख मंडल पर सूर्य की किरणें थिरकने लगी। इसी समय कहीं से एक काला नाग आया और फन फैलाकर छत्र की भाँति धूप की किरणों से बालक की रक्षा करने लगा।" पृ० १। पुनश्च—"महामंत्री ने कृष्णदेव राय को राजमहल से बाहर लाकर एक अलंकृत हाथी पर बैठाया और अपने आप एक दूसरे हाथी पर बैठे। जुलूस समस्त राजधानी में घूमा। महामंत्री के पीछे विविध राज्यों के राजा, विजयनगर साम्राज्य के सामन्त, दण्डनायक, मन्त्री, अधिकारी विधिवत् वाहनो पर सवार रहे।" पृ० ४५। वातावरण प्रायः किसी घटना का पूर्व संकेत देता है और मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि तैयार करता है।

प्रस्तुत उपन्यास में घटना विस्तार एवं सम्वाद प्रायः नहीं के बराबर है। अतः पात्रों के चरित्र का अन्तरंग विश्लेषण कहीं दुबक कर रह गया है। भाषा शैली में भी बहुधा सामग्री प्रेषण का पक्ष प्रबल रहा है। अतः वह यान्त्रिक सी हो गई है, परन्तु गंभीर भावो के क्षणो मे वह तदनुरूप भी होती रही है।

जहाँ तक उपन्यास के शीर्षक के औचित्य का प्रश्न है, उसके विषय मे यह कहना पर्याप्त प्रतीत होता है कि लेखक ने एक ऐतिहासिक स्वर्ण युग के दिव्य प्रकाश के मानस प्रतिबिम्बों या प्रभावो को उनकी तथ्यात्मकता मे प्रकट करने का प्रयत्न किया है। प्रकाश के अस्तित्व में ही उसकी छाया पड़ती है, परन्तु गुणात्मक प्रकाश युग-युग तक अपनी छाया मानव जाति पर अंकित करता चला जाता है। आज हम उस युग की महानता के प्रकाश को केवल इतिहास एवं जनश्रुतियो की छाया के माध्यम से समझ सकते हैं।

'महामन्त्री तिम्मरुसु' अथवा सम्राट कृष्णदेव राय भी वैकल्पिक शीर्षक हो सकते थे, लेकिन लेखक ने व्यक्तिगत महत्ता को युग के सन्दर्भ में ही महत्व देना पसन्द किया और सराहा, अतः प्रकाश और परछाइं शीर्षक का अपना औचित्य है। महामन्त्री तिम्मरुसु के व्यक्तित्व का प्रकाश दिव्य प्रकाश किस प्रकार कठोर नियति ने निराशात्मक एवं छायात्मक बना दिया, यह भाव भी उक्त शीर्षक मे सन्निहित हो सकता है।

□

स्वप्न और सत्य

"स्वप्न और सत्य" प्रशस्त उपन्यासकार श्री बालशौरि रेड्डी का सन् १९६८ में रचित एक विशिष्ट मौलिक सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास के प्रायः सभी पात्र आन्ध्र-मूल के हैं और घटनाएँ भी उनसे ही सम्बन्धित है किन्तु वे प्रायः मद्रास में ही घटित होती हैं। ग्रामीण परिवारों से उद्भूत यह कथा अपनी सम्पूर्णता मद्रास नगर के संश्लिष्ट वातावरण में प्राप्त करती है। यह श्री रेड्डी का सातवाँ उपन्यास है। इससे पूर्व के सामाजिक उपन्यासों में भी मद्रास नगर घटनास्थली रही है। इसका प्रमुख कारण यह है कि श्री रेड्डी के जीवन का बहुभाग मद्रास महानगर में बीता है और अब तो वे यहीं के स्थायी नागरिक बनकर अपने भवन में सपरिवार रह रहे हैं। अतः उपन्यास में आन्ध्र एवं तमिलनाडु की गंगा-जमुनी धारा है ही। यह उपन्यास मूलतः एक चरित्र प्रधान सामाजिक उपन्यास है और अपने अन्तरंग में व्यक्ति मनोविज्ञान से तरंगायित है। 'शबरी' पौराणिकता में, 'जिन्दगी की राह 'प्रेम प्रसंगों में, "यह बस्ती ये लोग" नगरांचलीय सामाजिक कलमष में, 'भग्न-सीमाएँ' सामाजिक रूढ़ियों में और 'बैरिस्टर' अनमेल विवाह और झूठी आधुनिक सभ्यता में अपनी-अपनी परिणति खोजते हैं, जबकि 'स्वप्न और सत्य' व्यक्तिगत एवं सामाजिक जिजीविषा से ऊपर उठकर एक उदात्त सारस्वत कल्पना की साकारता में अपनी परिणति में साक्षात्कार करता है। यह सब एक व्यक्ति के माध्यम से घटित होता है। यह व्यक्ति प्रस्तुत उपन्यास का नायक चन्द्रशेखर है। यह नायक अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न कर्मठ व्यक्ति है। जीवन की विषमताओं के अनवरत संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ता है। इस नायक में अनेक अनुकरणीय विशेषताएँ हैं तो कतिपय व्यक्तिगत सीमाएँ भी हैं। यह कृति घटना संकुल एवं शताधिक पात्रों से व्याप्त है। कृति की समग्रता के केन्द्र में चन्द्रशेखर का व्यक्तित्व भामण्डल के रूप में विद्यमान है। कृति की समग्रता एवं मूल दृष्टि पर विचार करने के लिए उसके कथानक के मूल मुद्दे की संक्षिप्ति आवश्यक है—

सम्पन्न कृषक वसवय्या के पाँच बेटियाँ और दो बेटे थे। एक बेटी का विवाह पहले ही हो चुका था। उनसे एक पुत्र था और वह पुनः गर्भवती थी। दूसरी बेटी का विवाह हाल ही में हुआ था। बाकी तीनों बेटियाँ कुँवारी थी। दो लड़कों में से बड़े का विवाह हो चुका था। छोटा अविवाहित था, पर विवाह के योग्य हो चुका था। वह शादी करना चाहता था लेकिन माता-पिता और भाई टाल रहे थे। बड़ी पुत्री के पुनः प्रसव का समय आया। प्रसव पीड़ा में वह नवजात सन्तान के साथ चल बसी। अब इसकी एक मात्र सन्तान चन्द्रशेखर के लालन-पालन का भार पिता सोमय्या

और मामा रामय्या पर आ पड़ा। नरसय्या उपन्यास के होनहार नायक (सम्प्रति बालक) चन्द्रशेखर का छोटा भ्राता है। यह प्रायः अपने भाई-भाभी से उपेक्षित है और चाहकर भी शादी से वंचित रह जाता है, अन्ततः एक संन्यासी बन जाता है।

चन्द्रशेखर का लालन-पालन और विद्याभ्यास उसके पिता के संरक्षण में हुआ। मामा से उसकी पटती न थी। चन्द्रशेखर के पिता सोमय्या के छह भाई थे और पूरे परिवार में कुल ५३ सदस्य थे। एक चचेरा भाई राजशेखर था जो प्रायः चन्द्रशेखर के साथ रहता था।

चन्द्रशेखर प्रारम्भ से ही अपनी कक्षा में प्रथम आता था। वह खेल कूद में भी अत्यन्त कुशल था। सभी उसे और उसके खेल को पसन्द करते थे। चन्द्रशेखर ने अपने गाँव में एक पुस्तकालय एवं वाचनालय की स्थापना करायी। एक अस्पताल की योजना भी बनी। चन्द्रशेखर एक सुयोग्य वाक् स्पर्धी भी था। उपन्यास का सम्पूर्ण कथानक चन्द्रशेखर के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। २५ परिच्छेदों में कथावृत्त फैला हुआ है। कुल ३४८ पेजों का यह उपन्यास है। चन्द्रशेखर की शिक्षा तीव्रगति से बढ़ती गयी। वह एम० ए० होकर मद्रास के प्रेसीडेन्सी कालेज में प्रवक्ता भी बना। उसके जीवन में रह-रहकर तीन नारियाँ आयीं। गौरी, अनुराधा और यशोदा अपने-अपने ढंग से चन्द्रशेखर को प्रभावित करती रहीं। गौरी विशुद्ध प्रेमिका के रूप में, अनुराधा पत्नी के रूप में और यशोदा एक प्रेमिका और गुणानुरागिनी नारी के रूप में इस युवक के जीवन में आयी। इस सभी का व्यक्तित्व अत्यन्त मनोरम एवं निजता पूर्ण है। फिर भी गौरी निराली ही है। गौरी में ग्रामीण भोलापन, प्रेमतरंग और विवेका का अद्भुत मिश्रण है। वह शेखर के प्रति अपार प्रेम रखते हुए भी भोग्या नहीं बनती। इसी प्रकार यशोदा भी चन्द्रशेखर के प्रति आकृष्ट होती है, परन्तु वह अपना सन्तुलन नहीं खोती। चन्द्रशेखर भी प्रेमविह्वल होता है और वासनात्मक होने, लगता है, पर वह भी अन्ततः अपने अद्भुत संयम से काम लेता है।

कथानक में चन्द्रशेखर के बहु आयामी व्यक्तित्व की विकासशील प्रकृति का आद्यन्त भव्य आस्फालन हुआ है। अपने पारिवारिक जीवन को सुगठित एवं विकसित करता हुआ वह धीरे-धीरे अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर भी पहुँच जाता है। अपनी पत्नी, सन्तान एवं प्रिय जनों की चिन्ता और सेवा करता हुआ वह स्वार्थ त्याग की उच्चता का आदर्श भी प्रस्तुत करता है। कभी कभी निराशा की दशा में में वह मद्यपान एवं धूम्रपान का शिकार भी हो जाता है। आवेश में अपनी पत्नी पर हाथ भी उठाता है। आगे चलकर प्रायश्चित्त भावना से भी भर उठता है।

विद्या के क्षेत्र में चन्द्रशेखर की ख्याति चरम पर पहुँच गयी। उसे विदेश यात्रा का सम्मान-सहित सुअवसर प्राप्त हुआ। उसे विदेशों में एक मौलिक शोधक के रूप में अत्यधिक सराहा गया। चन्द्रशेखर की प्रबल आकांक्षा थी कि एक विश्व भाषापरि-

षद् भवन निर्मित हो जिसमें विश्व भर की भाषाओं का अध्ययन हो। इसके लिए उसे विदेशों से अपार धन प्राप्त हुआ और अन्ततः भवन निर्मित भी हुआ। चन्द्रशेखर की पत्नी और पुत्र-पुत्री भी अत्यन्त हर्षित हुए।

भवन के उद्घाटनोत्सव में विदेशों के प्रख्यात विद्वान आये। नियति की विडम्बना कुछ ऐसे विचित्र रूप से घटित हुई कि चन्द्रशेखर के भवन में टकरा कर गिर पड़ने से नेत्र जाते रहे और दूसरी ओर एक पाषाण शिल्पी गजराज पर ऐसा गिरा कि उसके दोनों हाथ ही कट गये।

चन्द्रशेखर अपने स्वप्न को साकार तो कर सका पर देख न सका, तो दूसरी ओर जिन हाथों ने उस भवन को निर्मित किया, वे न रहे।

इस प्रकार इस महान् कृति का कथानक एक गहरी करुण घटना-जोड़ी के साथ समाप्त होता है।

इधर चन्द्रशेखर की अनुसन्धान परिषद् भवन की दुरन्त कल्पना पूरी हुई कि दुर्दैव ने उनकी नेत्र ज्योति ही छीन ली। द्रष्टव्य है—"हाँ भाई। हमने कल्पना भी न की थी और न स्वप्न में ही सोचा था कि यह भवन इतना अद्भुत होगा। इसकी शोभा देखने के लिए दो आँखें पर्याप्त मालूम नहीं होतीं। काश विधाता ने आँखों की इतनी ज्योति दी होती जिससे कि उस भवन के सौन्दर्य के बिंब को अपने नयनों में उतारा जा सकता।""मैं उद्घाटन दिवस से पूर्व उस भवन को देखना नहीं चाहता। अधूरी कला को देखने से फिर भवन की रमणीयता का पूरा आनन्द न हो सकेगा। अब चलिये वापस लौट चलेंगे।" यह कहते हुए चन्द्रशेखर घूम पड़े कि धोती के छोर में पैर के फँस जाने से ज्योंही पत्थर पर पैर रखा त्योंही उसके लुढकने से गिर पड़े। पास में वेल्डिंग का काम हो रहा था, उस पर गिरने से सारा चेहरा ही जल गया। ""उनके नेत्रों की ज्योति बिल्कुल जाती रही। पृ० ३४२।

वस्तुतः यह उपन्यास एक व्यक्ति चरित्र प्रधान उपन्यास है। ऐसा व्यक्ति जिसके निज निर्णय की पद चाप से घटनाएँ जन्म लेती हैं। यह व्यक्ति व्यक्तिगत स्तर पर अपनी नेत्र ज्योति एवं और बहुत कुछ खोकर भी अपना सहज अदम्य उत्साह नहीं छोड़ता। आइए इसके चरित्र के अन्तरंग और बहिरंग से साक्षात्कार करें।

चन्द्रशेखर

पात्रों और घटनाओं के सम्बन्ध में उपन्यासकार श्री बालशौरि रेड्डी का कथन है—"इस उपन्यास में पात्रों की संख्या कुछ अधिक अवश्य है। प्रधान पात्रों के सम्पर्क में आने वाले कतिपय पात्र सदा साथ नहीं चलते, अपितु घटनाचक्र के अनुरूप उभरते और लुप्त भी होते रहते हैं। आज व्यक्ति का कार्यक्षेत्र व्यापक है। देश-विदेश से सम्बन्ध रखने वाला आज का मानव कई रूपों मे कई स्थानो मे अनेक व्यक्तियों के

सम्पर्क में आता है और अपने व्यक्तिगत तथा व्यवहार से दूसरों को प्रभावित करता है और आप भी प्रभावित होता है।

इस उपन्यास की अधिकांश घटनाएँ यथार्थ होते हुए भी काल्पनिक हैं और काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ हैं। कल्पना और यथार्थ की क्रीडास्थली यह औपन्यासिक कृति है। इस उपन्यास में स्वप्न आदर्श है और सत्य यथार्थ है।" - "इन्द्रधनुष की रंगीनी इस उपन्यास के विभिन्न पात्रों में दृष्टिगोचर होगी।"

इस उपन्यास के अधिकांश पात्र वर्ग विशेष के प्रतिनिधि हैं। ये निश्चित यान्त्रिक भूमिका निभाकर कृतकृत्य हो जाते हैं। उनका अपना कोई विशिष्ट व्यक्तित्व नहीं है, परन्तु, चन्द्रशेखर, लक्ष्मीशंकर, गौरी, अनुराधा और शारदा के व्यक्तित्व अपनी निजता से भावभूत एवं अनुप्राणित होते हैं। चन्द्रशेखर इन सभी पात्रों सर्वाधिक दीप्त एवं संकल्पात्मक क्रियाओं का चरित्र है। वह समय के साथ जीकर समय से जूझकर भी जीना जानता है। बाल्यावस्था से अन्तिम क्षण तक उसका जीवन चुनौतियों और संघर्षों का रहा है। संघर्ष और सोद्देश्य क्रियाशीलता सजीव चरित्र के प्रतिनिधि लक्षण हैं। चन्द्रशेखर बहुमुखी दीप्त प्रतिभा में समलंकृत व्यक्तित्व है। वह स्वयं में सांसारिक एवं स्वार्थमय उन्नति के स्वप्नों और लालसाओं में प्रायः न उलझकर सात्विक, सारस्वत एवं सार्वभौम संकल्पों के क्रियान्वयन में अधिकाधिक जीता है। वह सुयोग्य विद्यार्थी, कुशल खिलाड़ी, समाज सेवी, पर दुखकातर, सहज-संयत प्रेमी, निष्णात प्राध्यापक, उद्भटवक्ता, मौलिक अनुसंधाता एवं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का व्यक्तित्व लेकर निरन्तर उच्चताओं में जीता है। यदाकदा उसमें क्रोध, हताशा और वासना भी उभरती है, परन्तु वह इन हीनताओं पर तुरन्त विजय प्राप्त करता है। कृति के ज्वलन्त माध्यम से चन्द्रशेखर को और अधिक समझा जा सकता है।

पूत के लक्षण पालने में ही दिख जाते हैं। चन्द्रशेखर की माँ का देहान्त जब हुआ, तब वह केवल चार साल का बालक था। उसका कुटुम्ब तो बहुत बड़ा था, परन्तु उसका पालन वहाँ न हो सका। पिता को विवश होकर उसकी शिक्षा आदि की व्यवस्था स्वतन्त्र रूप से करनी पड़ी। चन्द्रशेखर का भागकर छिप जाना और बहुत देर तक न लौटना उक्त स्थिति का प्रमाण है। चचेरा भाई राजशेखर और अविवाहित छोटे मामा से चन्द्रशेखर की काफी पटती थी। साथी प्रभाकर से भी उसका बोर्डिंग में मैत्री भाव था। "चन्द्रशेखर पढ़ाई में तेज था, व्यवहार की दृष्टि से भी विनयशील और मृदुभाषी था। इसलिए गाँव के सभी लोग उसके व्यवहार से बहुत प्रसन्न थे।" पृ० ३।

चन्द्रशेखर में छोटी उम्र में ही समाजसेवा और स्वस्थ चिन्तन की प्रवृत्ति प्रबल हो उठी थी।

कालेज की आरंभिक कक्षा में पढ़ते समय गाँव की एक अल्हड़ किशोरी गौरी से चन्द्रशेखर का रागात्मक सम्बन्ध प्रारम्भ हुआ और बढ़ता ही चला गया। इसमें

पहल और तीव्रता गौरी ने ही दिखाई थी। दोनों का एकान्त मिलन, प्रणयवार्ता और आलिंगन आदि तो घटित हुए, परन्तु अन्ततः गौरी के सद्विवेक ने और चन्दू के सहयोग ने स्थिति की विकटता को रोक लिया, दोनों सम्हल गये। गौरी के एकान्त प्रणय निमन्त्रण पर ही चन्दू गौरी के कमरे में गया था। वहाँ वह गौरी पर पूरी तरह आसक्त हो उठा और भोगने के लिए बेचैन भी। तभी गौरी ने दृढ़ता पूर्वक कहा, "चन्दू, अपनी जगह बैठ जाओ। पहले यह बताओ, क्या तुम मेरे साथ विवाह करने को तैयार हो?" विवाह का प्रश्न सुनते ही चन्दू लज्जित हो उठा। शान्त स्वर में बोला, "मुझे सोचने के लिए समय चाहिए।"

"तब फिर यह जान लो कि विवाह के बाद ही मैं हमेशा के लिए तुम्हारी बन सकती हूँ। उस वक्त चाहो तो तुम मेरे शरीर का उपभोग अपनी इच्छा के अनुरूप कर सकते हो। क्षणिक वासना की तृप्ति के लिए जीवन के आदर्शों और मूल्यों की बलि नहीं देनी चाहिए, चन्दू।"

"मैं शर्मिन्दा हूँ, गौरी। न मालूम मुझे क्या हो गया था। तुम्हारे स्पर्श ने मेरे संयम के बाँध को तोड़ दिया था। वासना के उद्वेग ने पागल सा बना दिया था।"

"फिर भी मैं तुम्हारी प्रशंसा करती हूँ चन्दू। दूसरा पुरुष होता तो बलात्कार करता और संभवतः अपनी वासना की तृप्ति कर लेता।"

"यह पशुता है। मैं स्वयं अपनी करनी पर·······लेकिन मैं तुमको यह विश्वास दिलाता हूँ कि मैं कोई.·········नहीं हूँ। आत्म निग्रह अच्छा आदर्श है, उसे जीवन में उतारना अत्यन्त कठिन है।" पृ० ५३-५४।

उक्त प्रसंग उदाहृत करने से उपन्यास के नायक चन्द्रशेखर की सहज दुर्बलता और अन्ततः उस पर विजय पाने की शक्ति का स्पष्ट बोध हो जाता है। एक नारी ने आतिथ्यवश चन्द्रशेखर को फलाहार कराया और उसकी पीठ पर साबुन भी नहाते समय मला। चन्द्रशेखर ने उसे अपनी बहिन के समान माना। चन्द्रशेखर और गौरी एक दूसरे के प्रति आसक्त रहे और अन्ततः घोर विरोध के बावजूद जब चन्द्रशेखर अपने दलबल के साथ गौरी को ब्याहने पहुँचा, तब तक गौरी का विवाह बलात् किसी अन्य से किया जा चुका है।

एक सुयोग्य एवं लोकप्रिय विद्वान प्राध्यापक के रूप में भी चन्द्रशेखर ने अद्भुत सफलता अर्जित की। मद्रास प्रख्यात प्रेसीडेन्सी कालेज में वह अंग्रेजी भाषा और साहित्य का प्राध्यापक नियुक्त हुआ था। समस्त विद्वज्जगत् में एवं छात्र जगत् में चन्द्रशेखर एक सुयोग्य वक्ता, विद्वान् अध्यापक के रूप में प्रख्यात हो गया। देश-विदेश में भी उसके पांडित्य की चर्चा होने लगी। उसने विदेश यात्रा भी की।

इसी बीच चन्द्रशेखर का विवाह अनुराधा नाम की एक सुन्दर एवं सुशील लड़की से हो गया। वह लड़की चन्द्रशेखर के एक साथी प्राध्यापक लक्ष्मीशंकर की

बहिन थी। अब चन्द्र का जीवन वैवाहिक धरातल पर भी सुख चैन से बीतने लगा। अनुराधा में उसे एक सच्ची जीवन संगिनी मिली। अनुराधा को विदा कराके चन्द्रशेखर उसे मद्रास ले आया। "चन्द्रशेखर अनुराधा को ले मद्रास के दर्शनीय स्थानों में में घूमता रहा। उसने उसे कई भाषाओं की फिल्मे दिखाई। कई नृत्य, नाटक और संगीत समारोहों में ले गया, सरकस घुड़दौड़ दिखाई। मद्रास के प्रमुख उद्योग केन्द्रों में भी ले गया। यह सब देखने के पश्चात् अनुराधा के विचारों में व्यापकता आने लगी।" पृ० १२७।

चन्द्रशेखर और अनुराधा में एक दूसरे के प्रति अच्छी समझ, आदर और उत्कट प्रेम था। अनुराधा के प्रभाव से ही चन्द्र ने सिगरेट, पान, ताश और शराब की लत छोड़ी थी। यह बात बिल्कुल सच है कि उत्कृष्ट प्रतिभा में कुछ अक्षम्य दोष भी होते हैं।

सुयोग्य वक्ता, विद्वान एवं अनुसन्धाता के रूप में चन्द्रशेखर ने पर्याप्त यश अर्जित किया था। ब्रिटिश काउन्सिल द्वारा आयोजित सेमीनार में चन्द्रशेखर ने अंग्रेजी का 'तेलुगु भाषा पर प्रभाव' और 'पाश्चात्य संस्कृति को भारतीय संस्कृति की देन' पर निबन्ध प्रस्तुत किये। ये निबन्ध बहु प्रशंसित हुए और डा० फास्स ने तुरन्त चन्द्रशेखर को लन्दन आकर शोध करने का निमन्त्रण भी दिया। राजनीति और अपने गाँव के सुधार में भी इस मेधावी ने पर्याप्त रुचि ली। भाषावार प्रान्तों के गठन को अत्यधिक आगे बढ़ाया गया और आन्ध्रप्रदेश को इसी आधार पर एक विशाल प्रान्त भी घोषित कराया गया। तमिलनाडु और हैदराबाद-तैलंगाना में डूबे हुए आन्ध्र जिलों को वापस लिया गया। धीरे-धीरे चन्द्रशेखर का अपना भवन भी निर्मित हो गया। तदन्तर उसके पिता जी चल बसे। छोटे मामा पहले ही संन्यासी बन चुके थे। समय आया चन्द्रशेखर अमेरिका, इंग्लैंड आदि की सारस्वत यात्रा पर गये। वहाँ उन्हें अपार यश और धन की प्राप्ति हुई। लौटकर अपनी चिरपालित इच्छा (भाषा परिषद-भवन) की पूर्ति का सुअवसर आया। अत्यन्त उपयोगी, भव्य एवं कलापूर्ण भवन निर्मित हुआ। शिल्पी ने जी जान से परिश्रम किया। भवन के उद्घाटन का शुभ मुहूर्त आया। दुर्भाग्यवश उसी समय एक दुर्घटना में चन्द्रशेखर की आँखें नष्ट हो गईं तो दूसरी में उत्कृष्ट शिल्पी गजराज के दोनों हाथ कट गये। दुर्दैव का यह वज्रप्रहार विश्व के इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ ही है।

जिस शिल्पी ने सम्पूर्ण श्रम, प्रतिभा और निष्ठा से उक्त भवन का निर्माण किया, वह उसी भवन के द्वारा हस्त-युगल विहीन कर दिया गया, तो दूसरी ओर मालिक चन्द्रशेखर उद्घाटन समारोह के पूर्व ही उसी भवन में नेत्रहीन हो गया।

सुख की चरम अवस्था का सन्निकट क्षण और उसी समय दुःखो का ऐसा नाटकीय दृश्य अपने आप में बेजोड़ है।

चन्द्रशेखर आजीवन संघर्ष करते रहे, जीवन की महानता का वरण करते रहे,

समय-समय पर विषमताओं का विषपान भी करते रहे, और अन्ततः भी उन्हें विषपान के साथ समझौता करके स्वयं को संयत रखना पड़ा। प्रत्येक होनहार युवक के लिए यह चरित्र अपार प्रेरणा दे सकता है।

अनुराधा

इस उपन्यास के अत्यन्त जीवन्त पात्रों में चन्द्रशेखर की पत्नी अनुराधा है। अनुराधा एक मध्यवर्गीय सम्पन्न परिवार में जन्मी है। वह रूपवती, गुणवती एवं आवश्यक रूप से शिक्षित है। विवाह उसके सहज गुणों के आधार पर सम्पन्न हो गया। विवाह के पश्चात् वह अपने गाँव को छोड़कर अपने पति के साथ पहली बार महानगर मद्रास में आई। धीरे-धीरे अपने गुणों से उसने अपना परिवार सुव्यवस्थित किया और पति की हर बात में विवेक पूर्वक पूरा साथ भी दिया। वह दो सन्तानों की माँ बनी। उसका अपना भवन भी बना। उसके सहयोग से उसके पति को सार्वभौम यश भी मिला। अनुराधा चन्द्रशेखर के लिये एक पत्नी के अतिरिक्त प्रेमिका, सखी, मन्त्रिणी और यथावसर माँ भी सिद्ध हुई। समय-समय उसने पति से सात्विक संघर्ष भी किया। इसका मूल कारण था पति के प्रति अनुराधा का अति अनुराग और अनुराग सदा ही प्रिय की सुरक्षा चाहता है। चन्द्रशेखर यदा कदा सिगरेट, ताश और शराब का आदी हो गया था और विलम्ब से घर लौटने लगा था। अनुराधा ने बहुत दृढ़ता और सात्विकता से सत्याग्रहपूर्वक चन्द्रशेखर को उक्त दुर्व्यसनों से मुक्त किया।

"अनुराधा माँ की लाड़ली पुत्री थी। लाड़-प्यार में पली रहने के कारण हठी स्वभाव की हो गई थी। हर बात में अपनी इच्छा को श्रेष्ठ मानती और दूसरों के विचारों का खंडन करती। यह आदत उसकी जन्मजात थी।

अनुराधा की दूसरी दुर्बलता यह थी कि वह जिस विचार को ठीक मानती, वह चाहती थी कि दूसरे उसके अनुरूप जरूर चलें। विवाह के बाद चन्द्रशेखर के प्रति अनुराधा का प्रेम बढ़ने लगा। वह ऐसा अनुभव करने लगी कि दिन भर चन्द्रशेखर उसकी आँखों के सामने रहें तो क्या ही अच्छा हो।" पृ० १२८।

ऊपर के उद्धरण से अनुराधा का स्वभाव स्पष्ट हो जाता है। उसके स्वभाव का रहस्य यह था कि वह सदा सदाग्रह का ही आश्रय लेती थी और प्रायः अपने लिये नहीं, अपने पति के हित के लिये। वह पति प्रेम में इतनी आसक्त थी कि उसकी विदेश यात्रा का प्रायः अन्त तक विरोध ही करती रही। अपने ससुर को वह पिता समान मानकर उनका आदर करती थी, तो ससुर जी भी अनुराधा को अपनी बेटी के समान आजीवन मानते रहे। साधु-सन्तों के प्रति भी अनुराधा सदा उदार भाव रखती थी। एक प्रसंग में वह सोचती है, "ये लोग कैसे निश्चिन्त रहते हैं। मन को

सभी विकारों और इच्छाओं से मुक्त रखना कैसा कठिन कार्य है। भिक्षु अनवरत साधना से इस कार्य को सरल बना लेते हैं। पृ० २२१।

अनुराधा उदार, सहनशील होते हुए स्वाभिमानिनी भी है, वह असत्य और अनुचित के विरोध में अड़ना भी जानती है। प्रसंग वश यह सम्वाद प्रस्तुत है—"आप में जो आदतें हैं, उनको सुधार लीजिये। मुझे क्यों आदेश देने चले हैं ? मैं कोई मिट्टी की पुतली नहीं हूँ कि बिना सोचे-विचारे बैठी रहूँ। मेरा मन पर बस नहीं चलता, मैं क्या करूँ ?

"यही पागलपन है। बेकार सोचते रहने से दिमाग खराब हो जाता है।"

"मैं भी जानती हूँ, लेकिन न सोचने की दवा मेरे पास नहीं है, न आपके पास।"

"वाद-प्रतिवाद करना तो खूब सीख लिया।"

"आप मुझसे आगे हैं।"

"देखो, हर बात का उल्टा जवाब देकर मेरे क्रोध को न भड़काओ।"

"भड़काने से क्या करेंगे ?"

"अनु, मर्यादा का अतिक्रमण न करो।"

"मैं ज्यों-ज्यों दबती जाती हूँ, त्यों-त्यों आप सिर चढ़ते जाते हैं।"

"मैं फिर कहे देता हूँ, चुप रह जाओ।"

"मुझसे क्यों कहते हैं ? आप ही चुप रहिये।"

चन्द्रशेखर के क्रोध का पारा चढ़ गया। आव देखा न ताव। अनु के गालों पर चपत लगाना शुरू कर दिया। अनु के बचने की कोई चेष्टा न की।

चन्द्रशेखर ने दाँत पीसते हुए ललकार कर कहा—"फिर कभी ऐसी बकवास की तो चमड़ी उधेड़ दूँगा।"

"औरत पर हाथ चलाना बड़ी बहादुरी का काम समझते हो ?"

"नहीं, विवेक खोकर बकने वालों पर हाथ चलाना आवश्यक समझता हूँ।"

"मैं भी बदले मे आप पर प्रहार कर दूँ तो आपकी इज्जत कहाँ रहेगी ?"

"ऐसी धृष्टता करोगी तो हड्डी पसली तोड़ दूँगा।"

"देखूँगी मैं भी। मेरा पिता, दादा, परदादा बड़े वीर रहे हैं। मेरी नसों मे उन्हीं का रक्त बह रहा है। मैं भी अपमान सहन नही कर सकूँगी।"

चन्द्रशेखर दाँतों से होंठ दबाते हुए सहसा बाहर चले गये। चन्द्रशेखर के चले जाने पर अनुराधा काफी देर तक चुपचाप रोती रही। उसने यही चाहा कि नौकर और बच्चों तक उसके आपसी कटु वार्तालाप की गंध न पहुँचे। उस रात के पति के विलम्ब से लौटने पर भी वह बहुत चिन्तित और परेशान रही। पुनः काफी लम्बी चर्चा के बाद दोनों एक दूसरे के आलिंगन-पाश मे बँध गये। तो अनुराधा में यह पारिवारिक गरिमा भी थी। पृ० ३१५-३१६।

"स्वप्न और सत्य"—उपन्यास में गौरी सचमुच अपना विशिष्ट व्यक्तित्व लेकर आती है और अन्त तक अपनी सादगी, अल्हड़पन, प्रेम और आवश्यक नियन्त्रण मे जीती रहती है। वह वस्तुतः भारतीय गाँव की गोरी है। वह सुन्दर, स्वस्थ, यौवन सम्पन्न निश्छल एवं प्रेममयी है। चन्द्रशेखर की संकल्पित प्रथम पत्नी तो वही है, परिस्थितियश बात ने करवट बदल ली थी। चन्द्रशेखर ने तो प्राण हथेली पर लेकर भी उसके वरण का निश्चय किया था, परन्तु तब तक गोरी—किसी अवांछित से ब्याही जा चुकी थी। कैसी विचित्र नियति है जब गोरी पूरी तरह तैयार थी और अन्ततक रही भी तब चन्द्रशेखर अपनी शैक्षिक एवं अन्य महत्वाकांक्षाओ के जाल मे उलझा रहा और उसे पत्नी के रूप में न अपना सका। गौरी एक पवित्र संकल्पवती प्रेमिका है। उसने चन्द्रशेखर के समक्ष अनेक बार स्वयं को विवाह के लिये प्रस्तुत किया परन्तु बात टलती रही। गौरी चन्द्रशेखर के प्रेम पाश में रहकर भी एक लक्ष्मण रेखा में सदा रही, उसने उस मर्यादा का उल्लंघन कभी नही किया। विवाह के पूर्व उसने अपार प्रेम प्रकट किया, प्रिय के पारिवारिक कार्यो मे भी सरल भाव से सहयोग दिया। विवाह के बाद भी चन्दू के प्रति उसके मन में अपार स्नेह बना ही रहा। गौरी का विवाह अन्यत्र हो गया और चन्दू का भी, परन्तु दोनो में सात्विक सहज प्रेम फिर भी बना रहा, उनके पारिवारिक सम्बन्ध भी घनिष्ठ रहे। गौरी और चन्दू की रागात्मकता को दिनकर की 'उर्वशी' की इन पंक्तियों में अवलोका जा सकता है—

"नेत्र का जो पेय है, वह रक्त का भोजन नहीं है।
स्नेह का सौन्दर्य को उपहार रस चुम्बन नहीं है।"

चन्दू को वाक् स्पर्धा मे प्रथम स्थान मिला। बहुत सम्मान मिला। उसके फोटो विभिन्न पत्रिकाओं में छपे। गौरी ने इस सन्दर्भ में उसे जो पत्र लिखा, वह अनुपम था। देखिए—

"मेरे चन्दू,

तुम्हारा फोटो 'आन्ध्रप्रभा' मे छपा है। बड़े आदमी हो गये हो। मैंने सुना, बड़ों के फोटो छपते हैं। मुझे भूलना नही। उसे देख इतनी खुशी हुई कि तुम मेरे पास होते तो मैं तुम्हारे गाल चूम लेती।

मुझे चिट्ठी लिखोगे न ?

तुम्हारी
गौरी"

एकान्त कक्ष में चन्दू गौरी को भोगने के लिए आतुर हो उठता है। उस समय गौरी का यह निर्णयात्मक कथन कितना अनुपम है—

"तब फिर यह जान लो कि विवाह के बाद ही मैं हमेशा के लिये तुम्हारी बन सकती हूँ। उस वक्त चाहो तो तुम मेरे शरीर का उपभोग अपनी इच्छा के अनुरूप कर सकते हो। क्षणिक वासना की तृप्ति के लिये जीवन के आदर्शों और मूल्यों की बलि नहीं देनी चाहिये, चन्दू।" पृ० ५४।

अनुराधा के मन पर भी गौरी के स्वभाव और व्यवहार का सात्विक एवं हृदयहारी प्रभाव पड़ा।

गौरी अपनी सहज लघुता और ग्रामीणता में भी कितनी महनीय है, कितनी वरेण्य है, कितनी निजतामयी है ?

यशोदा

यशोदा इस उपन्यास के पात्रों में एक महत्वपूर्ण नारी पात्र है। वह मद्रास के प्रेसीडेन्सी कालेज के अंग्रेजी विभाग में प्राध्यापिका है और छात्र छात्राओं में व्यवहार एवं अध्यापन के विषय में लोकप्रिय भी है। वह विवाहित है और अपने पति से पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं है। वह सुन्दर है, स्वस्थ है, स्नेहमयी है और विदुषी तो है ही। वह यदा-कदा कोई भूल करती है तो समझ में आते ही अत्यन्त विनीत भाव से खुले रूप में स्वीकार करती है। वह सहज रूप से मिलनसार है। वह गुणग्रहण की आदी है।

प्रायः प्रेम सम्बन्ध का सूत्रपात किसी कलह या गलतफहमी से होता है। और यशोदा चन्द्रशेखर के बीच भी ऐसा ही हुआ। दोनों में छात्र-छात्राओं के परीक्षाफल के कारण मतभेद हो गया और कुछ समय के बाद वह सौहार्द में बदल गया। यशोदा की सदाशयता उसके इस वक्तव्य से स्पष्ट हो जाती है—

"सर, मैं मानती हूँ, मैंने जो कुछ किया वह भूल थी। लेकिन मेरा उद्देश्य शेखरजी के प्रति छात्राओं को भड़काने का कभी नहीं रहा। मैंने केवल इतना ही कहा था कि चाहो तो तुम लोग विभागाध्यक्ष से शिकायत करो। वास्तव में यह मेरी गलती थी। यह अनुभवहीनता का परिणाम है, इस पर मैं लज्जित हूँ। पृ० २६५। यशोदा के इस वक्तव्य ने शेखर के हृदय में बहुत अनुकूल परिवर्तन किया। अब वे दोनों एक दूसरे के प्रेमी और प्रबल समर्थक होकर रहने लगे। अब तो चन्दू की सुरक्षा का भाव भी यशोदा में जाग उठा। कालिदास ने ठीक ही कहा है, 'अतिस्नेहः पापशंकी'। यशोदा अब धूम्रपान और मद्यपान से भी चन्द्रशेखर को बचाने में यत्नशील रहने लगी। चन्द्रशेखर की पत्नी के प्रति भी यशोदा का शुद्ध प्रेम जागा। यशोदा चाहती थी कि चन्दू और उसका परिवार पूर्णतया सुखी रहे। अनुराधा के विषय में उसने कहा, "आपकी श्रीमती बड़ी अच्छी हैं सर! पिछली यात्रा में हमने अपना समय इतने आनन्द से काटा कि जिन्दगी भर उसे भूल नहीं सकती। वह बड़ी सुकुमारी है। लगता है स्पर्श करते ही मुरझा जाएगी। फूल जैसी उस कोमल नारी को यत्न से सम्हालिये सर!" पृ० २७४।

यशोदा और शेखर मे रागात्मक सम्बन्ध बढ़ता ही गया। "यशोदा का शारीरिक गठन इतना सुन्दर था कि वह अनायास ही पुरुष को अपनी ओर आकृष्ट कर लें।"

"लम्बा कद, हिरनी सी आँखें, गोरा रंग, चौड़ा ललाट, लम्बी नासिका, गोल सुडौल कपोल, दाड़िम बीजों की सी पंक्ति, लाल होठ, विशाल कर्ण, शंख जैसी ग्रीवा, घुंघराले केश, सबल शरीर, कोमल कर—ये ही कुल खोलकर यशोदा का रूप लावण्य था।" इस मनोमुग्धकारी रूप पर धीरे-धीरे चन्द्र आसक्त हो उठा और उसकी वासना प्रबल हो उठी। यशोदा ने दृढ़ता पूर्वक कहा, "मैं सत्य कहती हूँ चन्द्र। पहले मेरी भी यही दशा थी, कुछ समय पूर्व तक। आपके प्रेम ने मेरे दिल को हिलाया था, हलचल पैदा की थी, आंदोलित किया था। किन्तु जिस दिन भाभी से मेरा परिचय हुआ, उसी दिन से मैंने अपना मन्तव्य बदल दिया। आप पर भाभी का स्वत्व है। एक नारी के स्वत्व पर मैं अधिकार करना नहीं चाहती। क्षणिक आवेश में आकर मैं सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण नही कर सकती। सबसे बढकर मैं अपने पति के साथ विश्वासघात नहीं कर सकती। वे मुझे इतना मानते हैं, उफ, मैं व्याख्या नही कर सकती। "पृ० २६। अन्ततः चन्द्रशेखर ने कहा, सचमुच तुम मेरी बहन हो।"

इस प्रकार यशोदा का चरित्र एक सहज दुर्बलता में जीने वाला, किन्तु अन्ततः सचेत होने वाला नारी चरित्र है।

अन्ततः हम सहज ही कह सकते हैं कि यह उपन्यास आदर्श और यथार्थ की क्रीड़ास्थली है। जीवन सदा एक सा नही रहता, उस पर समय की धूप-छाँह पड़ती ही है, फिर भी कुछ निश्चित जीवनमूल्यों के साथ मानव जी सके तो श्रेयस्कर होगा। संकल्प के साथ जीने में कष्ट भी सुखद होते हैं—यही मथितार्थ प्रस्तुत करता है यह सशक्त उपन्यास।



आखिरकार एक कलाप्रधान कृति होती है, उसमें विज्ञान के सिद्धान्त, विश्लेषण और प्रयोगों को एक सीमा में ही रखा जा सकता है। इस कृति की यह उपलब्धि ही है कि इसमें विज्ञान की बौद्धिकता एवं पार्थिवता के साथ सहज रागात्मकता को निर्विरोध रूप से प्रस्तुत किया गया है। प्रख्यात सुकवि एवं समीक्षक डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने इस कृति के 'आमुख' में सहज रूप से कहा है—"राष्ट्र के नव-निर्माण की वैज्ञानिक चेतना को बड़े ही सहज भाव से प्रस्थापित किया गया है। भूगर्भशास्त्र के चमत्कारी स्वरूप को लेखक ने अपनी सहज हार्दिकता से अभिसिंचित किया है और वैज्ञानिक उन्मेष को रागात्मकता प्रदान की है। रूपनारायण का यह कहना कि 'ये निरे पत्थर नहीं, विश्व रूपी शिला की तहें हैं, विश्व रूपी ग्रन्थ के पृष्ठ हैं। "एक नया भाव बोध जगाती है और पाठकों को युग के वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के स्वप्न संघर्ष की ओर उन्मुख कर देती है। कितना अच्छा होता यदि विद्वान लेखक इस उन्मेष का सफलतापूर्वक निर्वाह कर सकता।""

परन्तु चौथे अध्याय में अर्जुन के तथा पाँचवें में सोनी के प्रवेश से उपन्यास चमत्कार और आदर्शवाद की ओर मुड़ जाता है। बाद में विदेश मे रहने पर भी हरि और मेरी भी उसी भूमिका का निर्वाह करते हैं। घटनाओं के इच्छानुकूल घटित होने और पात्रों के पूर्व निश्चित स्वरूप के उद्घाटित होते जाने से जिज्ञासा को ठेस लगती है और अनायास प्रेमचन्द के प्रेमाश्रम की याद आ जाती है। निदान तकनीकी युग के दुर्धर्ष, ऊहापोहजनित अनास्था, हताशा और टूटन का स्थान आदर्शवाद और हृदय परिवर्तन ले लेता है। उपन्यासकार ने इसका कथानक नवभारत के नव-निर्माण हेतु किये गये प्रयत्नों की सफलता और अपनी कल्पना के आदर्श समाज की स्थापना के रूप में प्रतिष्ठित किया है जिसमें वह पर्याप्त अंश तक सफल भी हुआ है।"

उपन्यास के अन्तः बाह्य के समग्र मूल्यांकन के लिए उसके कथानक के मुद्दों को समझ लेना आवश्यक है।—

आसाम के डिगबाई क्षेत्र के निकट कठिन परिश्रम के बाद १०,६०० फीट की खुदाई के बाद एक विशाल तैल कूप निकला। इस भूगर्भ शास्त्रीय कार्य मे श्री हरिचरण का प्रमुख योगदान था। हरिचरण और रूप नारायण उत्तरप्रदेश के थे और बचपन के साथी भी थे। हरिचरण ने अंग्रेजी में एम० ए० किया और रूप नारायण ने भूगर्भ शास्त्र में एम० एस-सी०। आगे चलकर हरिचरण ने भी भूगर्भशास्त्र में स्नातकोत्तर अध्ययन कर निपुणता प्राप्त कर ली। हरिचरण भी अब निपुण होकर इसी दिशा में आ गये। हरिचरण और रूप नारायण सिंहभूमि मे भूगर्भ-अनुसन्धानार्थ भेजे गये। वहाँ ताँबा और यूरेनियम का पता लगाना था। वहाँ अर्जुन सिंह नामक एक ग्रामीण भील-ज्योतिषी से इन दोनों का परिचय हुआ। अर्जुन सिंह ने भविष्यवाणी की कि हरिचरण की शादी किसी विलायती लड़की से होगी। उसने यह भी कहा कि यहाँ की खुदाई से लाभ नहीं होगा। उसने कहा, "साहब, जमीन की गन्ध और भतव को देखकर हम समय लेते हैं कहाँ पर क्या चीज मिलती है?" पृ० २६।

धरती मेरी माँ

"धरती मेरी माँ" श्री बालशौरि रेड्डी का सन् १६६८ में रचित एक प्रशस्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक चेतना से अनुप्राणित उपन्यास है। मूलतः यह उपन्यास भारत की वैज्ञानिक चेतना एवं आस्फालन के लिये संकल्पित कृति है, यह बात प्रासंगिक होते हुए भी प्रधान जैसी बन गयी है कि यह प्रशस्त कृति अन्ततः 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी व्यापक सामाजिक चेतना में अपनी भव्य परिणति से साक्षात्कार करती है। अतः इस उपन्यास को वैज्ञानिक-सामाजिक उपन्यास कह सकते हैं। हिन्दी जगत में यह एक सर्वथा नये धरातल का उपन्यास है। भारत की आदिम जातीय जिजीविषा से आरम्भ होकर अन्तर्देशीय ज्ञान एवं विज्ञान मानव-मिलन में अपनी उच्चता स्थापित करने वाली यह कृति है। भारत के हिमाच्छादित भूखण्ड से लेकर पेरिस तक का भूफलक इसके कथावृत्त में है। वस्तुतः भू, जन और संस्कृति के भव्य समन्वय द्वारा विश्व भर की पृथ्वी में समान रूप से मातृत्व के दिव्य दर्शन करने वाला यह उपन्यास है। अनेकता मे एकता इस कृति का लक्ष्य है।

पात्रों, विचारधाराओं, स्थलों और जीवनपद्धतियों का वैविध्य होते हुए भी इस कृति मे व्यापक एवं स्थायी सम रखता है। लेखक ने अपने 'दो शब्द' मे उचित ही कहा है—"मुख्यतः इसमे तीन प्रकार के पात्रों की सृष्टि की गयी है। सोनी आदि एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, तो मेरी आदि दूसरे वर्ग का, रूप और हरि तीसरे वर्ग का "मेरी और सोनी दो विचार धाराओं का प्रतिनिधित्व करती है, तो सोनी और रूप दो अन्य क्षेत्रों का। सबसे आदर्श भिन्न होते हुए भी लक्ष्य एक है। इस सत्य का उद्घाटन ही इस उपन्यास का ध्येय है।"

मानव बौद्धिक, रागात्मक एवं पार्थिव चेतना के विविध आयामो में समय समय पर गोते लगाता रहता है। मन समय-समय पर कुछ कालिक परिवर्तन भी चाहता है। रूपनारायण और हरिचरण इस उपन्यास में एक ही वैज्ञानिक चेतना के दो सशक्त स्तम्भ हैं, परन्तु वे दोनो एक स्फूर्त रागात्मक चेतना से युक्त भी हैं। यह चेतना भी आवश्यक आलम्बन एवं उद्दीपन विभावो को पाकर उभरती है। फलतः बौद्धिक चेतना अर्थात् कर्तव्यपालन और रागात्मक उत्तेजना मे एक सहज टकराहट होती है। एक सीमा तक दोनो पक्ष अर्थात् कर्तव्य और प्रेम साथ-साथ चलते हैं, परन्तु एक निर्णयात्मक स्थिति में आकर रूपनारायण अपने कर्तव्य को नयी दिशा दे देता है तो हरिचरण कर्तव्य और प्रेम का निर्विरोध निर्वाह करता चलता है। उपन्यासकार ने कृति को अत्यन्त बौद्धिक एवं पार्थिव-चेतना की शुष्कता से बचाए रखने के लिए उसमे रागात्मकता का सन्निवेश भी किया है। इससे कृति में अधिक रोचकता एवं शक्ति का संचार हुआ है, वह अपने उद्देश्य से भटकी भी नहीं है। उपन्यास

आखिरकार एक कलाप्रधान कृति होती है, उसमें विज्ञान के सिद्धान्त, विश्लेषण और प्रयोगों को एक सीमा में ही रखा जा सकता है। इस कृति की यह उपलब्धि ही है कि इसमें विज्ञान की बौद्धिकता एवं पार्थिवता के साथ सहज रागात्मकता को निर्विरोध रूप से प्रस्तुत किया गया है। प्रख्यात सुकवि एवं समीक्षक डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने इस कृति के 'आमुख' में सहज रूप से कहा है—"राष्ट्र के नव-निर्माण की वैज्ञानिक चेतना को बड़े ही सहज भाव से प्रस्थापित किया गया है। भूगर्भशास्त्र के चमत्कारी स्वरूप को लेखक ने अपनी सहज हार्दिकता से अभिसिंचित किया है और वैज्ञानिक उन्मेष को रागात्मकता प्रदान की है। रूपनारायण का यह कहना कि 'ये निरे पत्थर नहीं, विश्व रूपी शिला की तहें हैं, विश्व रूपी ग्रन्थ के पृष्ठ हैं।' "एक नया भाव बोध जगाती है और पाठकों को युग के वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के स्वप्न संघर्ष की ओर उन्मुख कर देती है। कितना अच्छा होता यदि विद्वान लेखक इस उन्मेष का सफलतापूर्वक निर्वाह कर सकता।"...

परन्तु चौथे अध्याय में अर्जुन के तथा पाँचवे में सोनी के प्रवेश से उपन्यास चमत्कार और आदर्शवाद की ओर मुड़ जाता है। बाद में विदेश में रहने पर भी हरि और मेरी भी उसी भूमिका का निर्वाह करते हैं। घटनाओं के इच्छानुकूल घटित होने और पात्रों के पूर्व निश्चित स्वरूप के उद्घाटित होते जाने से जिज्ञासा को ठेस लगती है और अनायास प्रेमचन्द के प्रेमाश्रम की याद आ जाती है। निदान तकनीकी युग के दुर्धर्ष, ऊहापोहजनित अनास्था, हताशा और टूटन का स्थान आदर्शवाद और हृदय परिवर्तन ले लेता है। उपन्यासकार ने इसका कथानक नवभारत के नव-निर्माण हेतु किये गये प्रयत्नों की सफलता और अपनी कल्पना के आदर्श समाज की स्थापना के रूप में प्रतिष्ठित किया है जिसमें वह पर्याप्त अंश तक सफल भी हुआ है।"

उपन्यास के अन्तः बाह्य के समग्र मूल्यांकन के लिए उसके कथानक के मुद्दों को समझ लेना आवश्यक है।—

आसाम के दिगबाई क्षेत्र के निकट कठिन परिश्रम के बाद १०,६०० फीट की खुदाई के बाद एक विशाल तैल कूप निकला। इस भूगर्भ शास्त्रीय कार्य में श्री हरिचरण का प्रमुख योगदान था। हरिचरण और रूप नारायण उत्तरप्रदेश के थे और बचपन के साथी भी थे। हरिचरण ने अंग्रेजी में एम० ए० किया और रूप नारायण ने भूगर्भ शास्त्र में एम० एस-सी०। आगे चलकर हरिचरण ने भी भूगर्भशास्त्र में स्नातकोत्तर अध्ययन कर निपुणता प्राप्त कर ली। हरिचरण भी अब निपुण होकर इसी दिशा में आ गये। हरिचरण और रूप नारायण सिंहभूमि में भूगर्भ-अनुसन्धानार्थ भेजे गये। वहाँ ताँबा और यूरेनियम का पता लगाना था। वहाँ अर्जुन सिंह नामक एक ग्रामीण भील-ज्योतिषी से इन दोनों का परिचय हुआ। अर्जुन सिंह ने भविष्यवाणी की कि हरिचरण की शादी किसी विलायती लड़की से होगी। उसने यह भी कहा कि यहाँ की खुदाई से लाभ नहीं होगा। उसने कहा, "साहब, जमीन की गन्ध और भूतत्व को देखकर हम समझ लेते हैं, कहाँ पर क्या चीज मिलती है?" पृ० २६।

धीरे-धीरे उस इलाके की भील जाति से इन दोनों का परिचय हो गया। सोनी नामक लड़की से रूप नारायण का रागात्मक सम्बन्ध शुरू हो गया। यहाँ की गहरी खुदाई में अपार जल स्रोत निकले। रूप नारायण के सत्प्रयत्न से और सोनी के सहयोग से वहाँ की शिकार जीवी भील जाति को कृषि-जीवन के लिए तैयार किया गया। धीरे-धीरे वहाँ के समस्त पहाड़ी जल का कृषि के लिए उपयोग होने लगा। इस बीच अनेक छोटी-मोटी घटनाएँ होती रहीं। हरिचरण को भारतीय सरकार के आदेश पर तुरन्त फ्रान्स जाना पड़ा। वहाँ उसे अनेक प्रकार के भूगर्भ-संबंधी परीक्षण करने थे और रिपोर्ट तैयार करनी थी। रूप नारायण को धीरे-धीरे अपने काम से विरक्ति होने लगी और उसने अन्ततः उसे छोड़ कर वहाँ की कृषि में रुचि ली। सोनी से अपार रागात्मकता अन्ततः परिणय में परिणत हो गयी। दोनों एक दूसरे को जी जान से चाहने लगे। सोनी ने विद्याध्ययन और गुणात्मक विकास करके दिल्ली जैसी नगरी में भी गौरवमय स्थान बनाया।

उधर हरिचरण फ्रांस में (पेरिस में) अपना शोध कार्य करने में जुटा ही था कि उसका सम्पर्क वहाँ के एक बुद्धिजीवी परिवार से हुआ। उस परिवार में एक गुणवती सुन्दर कन्या भी थी। उसका नाम मेरी था। हरिचरण धीरे-धीरे उसके अंग्रेजी के अध्यापक बने। यह सम्बन्ध भी अन्ततः विवाह में परिणत हो गया। मेरी ने भारत में आजीवन रहने की भीष्म प्रतिज्ञा के साथ हरिचरण से विवाह किया और अक्षरशः एवं सहर्ष अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया।

अन्ततः दोनों मित्रों का पुनर्मिलन हुआ। हरिचरण ने अपने क्षेत्र में अपार ख्याति प्राप्त की।

इस प्रकार यह उपन्यास वैज्ञानिक अनुसन्धान की महत्ता के साथ मानवीय रागात्मक सम्बन्धों को समरस भूमि से स्थापित करता है। वसुधैव कुटुम्बकम् का सिद्धान्त सोनी और मेरी के त्यागपूर्ण प्रेम से फलित हुआ। हरिचरण और रूप नारायण के व्यक्तित्व सदा विकासशील रहे हैं।

"धरती मेरी माँ" कृति का कथानक आरम्भ में विज्ञान एवं विशेष रूप से भूगर्भ-विज्ञान के क्षेत्र में व्यापक एवं व्याख्यात्मक था वह धीरे-धीरे सूचनात्मक होता चला गया। तो दूसरी ओर प्रेमतत्त्व का अंकुर जो एक बार फूटा तो फिर वह स्वयं को व्याख्यात्मक एवं अन्य सब कुछ को सूचनात्मक बनाता चला गया।

उपन्यास का क्षेत्र आसाम, आन्ध्र, उत्तर प्रदेश के भूगर्भ प्रवण इलाकों से लेकर फ्रांस तक फैला हुआ है, तो इसी प्रकार पात्र भी अनेक संस्कृतियों से आये हैं।

हरिचरण के इस कथन में उपन्यास के प्राण निहित है—

"आज तक मैं साहित्य को अधिक रोचक विषय मानता था, लेकिन आज मुझे ज्ञात हुआ कि साहित्य से अधिक रोचक विषय जिआलॊजी है। इसके अध्ययन से न केवल ज्ञान की वृद्धि होती है, अपितु आर्थिक दृष्टि से भी हम अपने राष्ट्र को सम्पन्न बना सकते हैं। पृथ्वी के गर्भ में जो अमूल्य रत्न, खनिज तथा अन्य पदार्थ छिपे पड़े

हैं, उनका पता लगा कर उन्हें खोज निकाल सकते हैं। इस वैज्ञानिक युग में तांबा, लोहा, इस्पात, सोना, चाँदी, रांगा, तेल, कोयला आदि देश के औद्योगिक विकास में उपयोगी बन सकते हैं। तभी हमारा राष्ट्र विश्व के अन्य राष्ट्रों की प्रगति के पथ मे कदम मिलाकर आगे बढ़ सकता है।" पृ० ८।

पात्र एवं चरित्र-चित्रण उपन्यास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। प्रस्तुत उपन्यास में अधिकांश पात्र निजी संघर्षमय दीप्त व्यक्तित्व युक्त हैं। इनमें भी रूप नारायण, सोनी, हरिचरण और मेरो अत्यधिक आत्मनिर्णय, कर्मठता, योग्यता और अनथक संघर्ष एवं संकल्प के साथ जीने वाले पात्र हैं। इन चारों पात्रों में संघर्ष और संकल्प की इतनी समानता है कि इनमें आपेक्षिक वरिष्ठता का निर्णय कर पाना काफी पेचीदा मुद्दा बन जाता है। पर, निर्णय तो करना ही होगा। तब आइए इन पात्रों से साक्षात्कार करें और इनके विषय में एक निर्णयात्मक समझ तक पहुँचें।

रूप नारायण

प्रस्तुत उपन्यास के समस्त पात्रों की तुलना मे कर्मण्यता, अनवरत संघर्षशीलता, संकल्प, आत्मशोधन की प्रवृत्ति, संस्कार और सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध निर्णय लेने और उसे चरितार्थ करने की शक्ति और वसुधैव कुटुम्बकम् के भाव को उदाहृत करने की शक्ति रूप नारायण में सर्वाधिक है। हरिचरण विद्वान है, योग्य है और विकासशील चरित्र है। परन्तु उसके सम्पूर्ण जीवन मे घातक संघर्षों की निरन्तरता और चुनौतियों का अभाव है अतः वह एक सपाट चरित्र की स्थिति मे केन्द्रित सा हो जाता है। उसने जो कुछ भी किया, उससे एक नये भाव बोध की सूचना कम ही मिलती है। हरिचरण महान् और रूप नारायण के लिए मान्य होकर भी नायकत्व के लिए सक्षम सिद्ध नही होता।

रूप नारायण एक निश्चित संकल्प के साथ भूगर्भशास्त्र मे एम० एस-सी० करता है। वह सिंहभूमि में उसी प्रकार के शोधकार्य के लिए हरिचरण के साथ भेजा जाता है। परन्तु वह हरिचरण को भूगर्भ-विद्या की महिमा से पूर्वतः अभिभूत करता है—"ये निरे पत्थर नही, विश्व रूपी शिला की तहें है, विश्व रूपी ग्रन्थ के पृष्ठ है। पुस्तक के पात्रों की भाँति हम इन शिला खण्डों से वार्तालाप कर सकते हैं।" पृ० ६।

हरिचरण के चले जाने पर रूप नारायण की देखभाल में ही खुदाई का कार्य चलता रहता है। उसमें अपेक्षित सफलता न मिलने पर रूप नारायण उस भूमि से निकले अपार जल का सदुपयोग करने का संकल्प करता है और अपनी प्रेमिका सोनी की सहायता से वहाँ जनजाति मे कृषि-प्रेम उत्पन्न करता है। उस आदिम जाति में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करता है। अपने मूल सेवा कार्य को छोड़कर इन आदिवासियों का ही एक अंग बनकर नही बस जाता है। सोनी से अपार प्रेम हो जाता है। सोनी भी इसके प्रेम मे विह्वल हो उठती है। अन्ततः दोनो का विवाह सम्पन्न होता है। रूप नारायण ने एक भील लड़की से विवाह करके एक आदर्श प्रस्तुत किया।

रूप नारायण ने उस प्रदेश में कृषि, व्यापार शिक्षा एवं सभ्यता सम्बन्धी अनेक विकास कार्य किये। वह उस क्षेत्र के लिए समर्पित भाव से काम करता रहा। कई बार उसके प्राण संकट में भी आये पर वह विचलित न हुआ। वहाँ की जनजाति ने भी सोनी और रूप का बहुमान किया। रूप नगर की स्थापना भी हुई।

रूप नारायण ने भील जाति के तथाकथित असभ्य एवं अशिक्षित लोगों का निकट से अध्ययन किया और एक अत्यन्त सशार निष्कर्ष प्राप्त किया, जिसने प्रचलित धारणा को गलत सिद्ध कर दिया। यह निष्कर्ष राष्ट्रीय चेतना का है,—देखिए—

"रूप नारायण ने देखा, गोल कुटी के चारो तरफ दीवार पर धनुष और तरकस टंगे हुए हैं। भाँति-भाँति के जानवरों के चमड़े और तीर भी यत्र-तत्र सजे हुए हैं।

रूप नारायण के दिमाग में तरह-तरह के विचार उठने लगे—मानव के जीवन मे युद्ध और संघर्ष का कैसा प्रबल स्थान है। आत्मरक्षा प्राथमिक आवश्यकता है। शरीर रक्षा दूसरी। इन आयुधो से वे अपनी रक्षा के साथ पेट पालन भी करते है। जानवरों का शिकार करते हुए भी इनके विचार सात्विक हैं। सभ्य समाज मे सात्विक भोजन करते हुए भी खूँखार विचार रखते हैं।" पृ० ८२।

सोनी के रूप और गुण से प्रभावित रूप नारायण के विचार आज के नवयुवको मे घर कर सके तो हमारी बहुत बड़ी वैवाहिक समस्या सुलझ जाए और देश गहरे अनमेल विवाहों के संकट से बच सके। —देखिए—"दिल कहता, चाहे कोई हो, वह मालवी है। मानव-सहज स्नेह, प्रेम, दया, करुणा आदि भावों से उसका दिल लबालब भरा हुआ है। मानव का मापदण्ड उसका बाहरी परिवेश नहीं, बल्कि उसकी आन्तरिक स्निग्धता और कोमलतापूर्ण मानवता है।" पृ० ८५।

निष्कर्षतः रूप नारायण में शिक्षा, योग्यता, भारतीय पिछड़े वर्गों की सेवा और निश्छल प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित है और वह कृति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र है।

हरिचरण

हरिचरण इस उपन्यास का एक बहुआयामी सशक्त व्यक्तित्व है। वह पूर्णतः अंग्रेजी में एम० ए० है और बाद में रूप नारायण के प्रभाव से भूगर्भशास्त्र मे भी विशेष योग्यता प्राप्त कर अधिकारी बनता है। हरिचरण मेधावी, प्रशासनिक क्षमता-सम्पन्न, दूरदर्शी, गुणग्राहक, राष्ट्रीय चेतना युक्त एवं रागात्मक-ऊर्जा-युक्त व्यक्तित्व है। रूप नारायण की भूगर्भ सम्बन्धी सूझबूझ को हरिचरण से पूर्ण समर्थन प्राप्त होता है।

सर्वथा नवीन और चुनौती भरी परिस्थिति में भी अविचल भाव से हरिचरण कार्य करता रहता है। उसकी लक्ष्योन्मुखता और आत्मसंयम की प्रवृत्ति वस्तुतः प्रशंसनीय है। भारतीय सरकार के आदेश पर वह तुरन्त फ्रान्स चला जाता है। वहाँ

की राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रयोग - शालाओं में विशेषज्ञों के साथ कार्य करता है और अपने पाषाण और मिट्टी के नमूनों का परीक्षण पर रिपोर्ट तैयार करता है। प्रो० ब्राउन का हरि को अद्भुत सहयोग मिला। उनके परिवार का एक सदस्य सा ही वह हो गया। उसने अत्यल्प समय में फ्रेंच भाषा भी सीख ली। उस भाषा में भाषण देने की भी वरेण्य क्षमता प्राप्त की। हरि का आंग्ल साहित्य के माध्यम से फ्रेन्च-सुन्दरी मेरी से मधुर सम्बन्ध प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे यह रागात्मकता अत्यन्त विकसित होकर विवाह में परिणत हो गई। विवाह के विषय में मेरी ने अद्भुत प्रायमिकता दिखाई और भारत में आजीवन रहना भी पसन्द किया।

हरिचरण ने फ्रान्स में रहकर अपना भूगर्भ सम्बन्धी कार्य तो किया ही, पर साथ-साथ प्रणय परिणय और वैदुष्य पूर्ण अनेक कार्य करके सामाजिक एवं साहित्यिक यश भी प्राप्त किया।

भारत लौटने पर हरिचरण का पारिवारिक जीवन सुख-शान्ति से बीतने लगा। वह सेवा-कार्यों के कारण काफी समय तक दूर-दूर रहता और अपने उत्तर-दायित्व का पूर्ण निर्वाह भी करता रहा। हरि के गुणों से प्रभावित मेरी का उसे भरपूर सहयोग मिलता रहा।

मेरी के प्रेम-प्रस्ताव पर हरि का आरम्भिक उत्तर उसके संयत प्रेम और इन्द्रिय संयम का परिचायक है—"मुझे तुम चाहे जो भी समझो। मैं समय और सम्बन्ध की सीमा जानता हूँ। उस मर्यादा का अतिक्रमण नहीं कर सकता।" पृ० १६३।

"हरिचरण का नाम अल्प समय में ही भारत के विख्यात भूगर्भशास्त्रियों में लिया जाने लगा। नित्य-प्रति देश-विदेशों में उसकी कार्य-कुशलता, बुद्धिमत्ता और अनुपम योजनाओं की प्रशंसा में पत्र आने लगे।" पृ० २०६। हरिचरण के प्रेम प्रसंग तो व्याख्या प्रधान है, परन्तु भूगर्भ की उपलब्धियाँ प्रायः सूचनात्मक ही हैं अतः रूप नारायण जैसी प्रत्यक्षता का अभाव रह जाता है।

सोनी

सोनी भारत के उत्तर पूर्वाञ्चल की एक भील जाति की किशोरी है। वह सुष्ठु, कर्मठ, उत्साहयुक्त एवं निजता सम्पन्न है। गुणग्राहकता और परदुःख कातरता की भी उसमें भरपूर मात्रा है। उसे अपने पिता शेरसिंह और माँ का अपार वात्सल्य प्राप्त है। कबीले के लोग भी उसका आदर करते हैं।

"उसकी सफेद दन्तपंक्ति इस तरह चमक रही थी, मानों घने बादलों के बीच विद्युत कौंध रही हो। युवती का रंग काला था, पर उसमें अनोखी चमक थी। सुगठित शरीर, चौड़ा माथा, चपटी नाक, मोटे होंठ, बड़े-बड़े कान, मयूर जैसी आँखें, उभरा वास, कमर पतली न थी न मोटी, पैरों में लोहे के कड़े, नंगे पाँव, बैलहीन वेश—यही कुल मिलाकर उसकी आकृति थी।" पृ० ३३।

सोनी के इलाके में पर्वत खनन के लिए रूप नारायण आया था। वह सहसा

कहीं टकरा कर गिर पड़ा और घुटने में चोट लग गयी। यह दृश्य देख सोनी ठठाकर हँस पड़ी और दो तीन बार हँसी। उसका परिचय रूप नारायण से हुआ। उसने रूप की चिकित्सा की और अपने गुण की पहली छाप अंकित की। सोनी स्वभाव से निर्भीक और एक मर्दानी औरत थी। रूप नारायण में कुछ भय देखकर सोनी बोली—"मैं पूछती हूँ, तुम कदम-कदम पर डरते जाओगे, तो जिओगे कैसे ?

फिर तुम कभी न कभी इसी डर के मारे अपनी जान भी दूसरों के हाथ में सौंप दोगे। जो आदमी अपनी जान का मालिक न हो वह आदमी ही कैसा ?" पृ० ३७।

सोनी के सरल, ठोस एवं अग्निमतापूर्ण गुणात्मक व्यक्ति का रूप नारायण पर जो प्रभाव बिम्ब निर्मित हुआ वह स्मरणीय है—"वह सोचने लगा—यह युवती कैसी हिम्मतवर, साफ दिल और सीधी है। यह बाहर भीतर से साफ है। इन सबसे बढ़ कर स्वावलम्बिनी भी है। खुद अपना पेट भर सकती है, अपनी रक्षा कर सकती है, और अपना भला बुरा सोच सकती है। इसमें कोमलता भी है, दृढ़ता भी है। सभी प्राकृतिक भाव सहज रूप से सोनी में विद्यमान हैं। जहाँ मानव में कृत्रिमता आती है, वह भले ही आकर्षक क्यों न हो, स्थायी नहीं होती। फिर भी मनुष्य कृत्रिमता को महत्त्व देता है। सहजता को पसन्द नहीं करता।" पृ० ३८।

सोनी में रूप नारायण के प्रति रागांकुर उत्पन्न हुआ, लेकिन रूप नारायण में यह भाव कुछ अधिक वेग से जागा। दोनों की रागात्मकता तीव्रगति से वृद्धि हुई परन्तु वह रागात्मकता केवल मांसल ही न थी, उसमें दो प्राण जीवन की सम्पूर्णता की तलाश कर रहे थे। अनेक बार दोनों का मिलन हुआ और अन्ततः विवाह भी हुआ।

सोनी ने तीव्र वेग से स्वयं को सुशिक्षित, सुसंस्कारी व्यवहार कुशल एवं नव-सामाजिकता सम्पन्न बनाया। वह नगर में धीरे-धीरे ऐसी जमी कि उसका वहाँ की नारी समाज में अपार यश फैल गया।

"सोनी रूप नारायण की न केवल छाया बनकर रही, बल्कि उसके हर काम में सहयोग देती थी। उसने संताल महिला समाज को ऊपर उठाने में सब तरह से कोशिश की।" पृ० १७८। संताल बस्ती का नाम सोनपुर रखा गया। इस प्रकार सोनी की सेवाओं के प्रति समाज ने आदर व्यक्त किया।

"वह महिला समाज की मंत्रिणी चुनी गयी। स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वावलम्बन आदि क्षेत्रों में नारी को आगे बढ़ाने का मौका प्रदान करते हुए महिला समाज की ओर से अस्पताल, स्कूल, सिलाई, मुद्रा लेखन नर्सिंग होम, प्रशिक्षण विद्यालय आदि खोले गये। इनका सचालन सोनी बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ करती थी।" पृ० १८८।

निष्कर्षतः सोनी का चरित्र एक भामंडल चरित्र है। अत्यन्त विपरीत परि-स्थितियों से संघर्ष करते हुए सोनी ने अपने जिस व्यक्तित्व का निर्माण किया, वह प्रायः दुर्लभ है, असंभव नहीं है। सोनी का चरित्र आज की होनहार बालिकाओं के लिये आदर्श है।

मेरी

प्रस्तुत उपन्यास के दशम परिच्छेद में पहली बार मेरी की अवतारणा होती है। वह पेरिस में भूगर्भ शास्त्र के विशेषज्ञ प्रो० ब्राउन की योग्य सुपुत्री है। अभी-अभी उसने कालेज मे प्रवेश किया है। अंग्रेजी साहित्य उसका विशिष्ट विषय है। मेरी सुन्दर, चुस्त और शालीन है। वह स्वभावतः गुणग्राहिणी है।

प्रो० ब्राउन ने हरिचरण का अपनी सुपुत्री से मेरा परिचय कराया, मेरी और हरिचरण में धीरे-धीरे वार्तालाप बढ़ता रहा और हरिचरण अंग्रेजी भाषा के भी विशेषज्ञ हैं, यह तथ्य भी प्रकट हुआ। मेरी को प्राइवेट रूप से हरिचरण अंग्रेजी पढ़ाने लगे। मेरी प्रभावित होती चली गयी। उसने कई प्रतियोगिताओं में पुरस्कार भी प्राप्त किये। वह हरिचरण के प्रति मन्त्रमुग्ध हो उठी और उसका रोम-रोम उसे चाहने लगा। अनेक अवसरों पर प्रेम प्रकट भी किया गया। हरिचरण ने अपनी इच्छा और विवशता भी प्रकट की, परन्तु मेरी ने हर कीमत पर हरिचरण से विवाह चाहा और वह उससे विवाहित हुई। मेरी एक संकल्पवती नारी है। वह विवाहित होकर भारत में ही रही। उसने हर प्रकार की परिस्थिति से समझौता किया और पति की यशोवृद्धि में अपना गौरव मानती रही। अनेक बार भारतीय समग्र वातावरण और हरिचरण की दूरी उसे अखरने लगी, परन्तु उसने एक विराट् चेतना के सन्दर्भ मे जीने का संकल्प किया और जी सकी। मेरी ने अपने पिता के सम्पत्ति सम्बन्धी प्रलोभन को भी ठुकरा कर भारत में स्वावलम्बी होकर रहना ही पसन्द किया। मेरी ने सम्पूर्ण पृथ्वी में मातृत्व को देखा।

सोनी और मेरी के चरित्रों की अपनी-अपनी गरिमा है। दोनों ने ही प्रेम, त्याग और विराट्ता का जीवन जिया है। दोनों ने ही स्वयं को अत्यन्त विकसित किया है।

मेरी के व्यक्तित्व की ऊर्जा और गम्भीरता को स्पष्ट करने के लिए उसका अपनी माँ के नाम लिखा गया यह पत्र पर्याप्त है—

"मम्मी! मुझे आज मालूम हुआ कि विश्व का कल्याण और समृद्धि, शारीरिक और बौद्धिक श्रम के साथ मानसिक पवित्रता पर निर्भर है। स्वार्थ की पूर्ति से तात्कालिक दैहिक सुख प्राप्त होता है, किन्तु सेवा और त्याग से आत्मिक सुख मिलता है, जो मनुष्य को ऊँचा उठाता है।""""धरती पर मनुष्य को सुखी होना है तो उसे धरती की कोख से ही अन्न, जल इत्यादि को ग्रहण करना होगा। उस अक्षय भंडार का पता लगाने वाली आँखें चाहिये। वे आँखें भूगर्भ शास्त्रियों को प्राप्त हैं। प्रबुद्ध भारत का जब इतिहास लिखा जायेगा उसमें मेरे पतिदेव का नाम भी आदरपूर्वक अंकित मिलेगा। ऐसे महान् व्यक्ति की पत्नी होने का मुझे सौभाग्य मिला है। इस पर मुझे फख्र है, नाज है।" पृ० २०८।

प्रस्तुत उपन्यास कथानक एवं चरित्र गठन की श्रेष्ठता के साथ-साथ सशक्त एवं प्रांजल भाषा—तथा अनुकूल वातावरण के स्तर पर भी अपनी गरिमा स्थापित करता है। कला और विज्ञान की गंगाजमुनी धारा इसकी अपनी निजता है तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इसका प्राण है। □

लकुमा

"लकुमा" प्रशस्त उपन्यासकार श्री बालशौरि रेड्डी का सन् १९६९ में रचित नवम् उपन्यास है। यह उपन्यास मूलतः ऐतिहासिक है किन्तु अपने विस्तार में नवोन्मेषवती कल्पना, स्पृहणीय रोमांस, नृत्यकला, राजनीति एवं सामाजिक गतिविधियाँ भी संजोये हुए है। मानव जाति के इतिहास में युद्ध और प्रेम इतने व्यापक एवं गम्भीर रूप से जुड़े हुए हैं कि इनका विरोधी स्वरूप भी अपनी सम्पूर्ण भूमिका में अत्यन्त सम्मोहक लगता है। यह प्रशस्त कृति इस पार्श्व पर भी अपनी पांक्तेयता सिद्ध करती है। वस्तुतः श्री रेड्डी जी के १२ उपन्यासों में यह कृति मेरी दृष्टि से सर्वोत्तम है। ज्वलन्त शौर्य, उत्कट प्रेम, संगीत कला और अन्ततः आत्म-सम्मानपूर्ण एवं प्रोज्ज्वल आत्म बलिदान के ताने-बाने अद्भुत तारतम्य से इस कृति मे परिव्याप्त है। यह उपन्यास मूलतः आन्ध्रप्रदेश के १३वी शती के राजा कुमार गिरि रेड्डी के वैभवपूर्ण एवं घटना संकुल समय के इतिहास को कल्पना कलित कमनीयता के साथ प्रस्तुत करता है। इस कृति में आचार्य चतुरसेन-कृत 'वैशाली की नगरवधू' की सौन्दर्य समन्वित कला और प्रेम प्रवाह को, भगवती चरण वर्मा की 'चित्रलेखा' के चित्त चमत्कारी प्रेम-प्रसंगों और संवादों को तथा वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'मृगनयनी' के सहज सम्मोहक शौर्य और रोमांस को एक साथ लघु किन्तु पुष्कल एवं प्रभावक रूप में देखा-सराहा जा सकता है। अतः यह कृति अपनी प्रादेशिक मिट्टी की गंध को अपने सहज विस्तार में सम्पूर्ण भारत की सोंधी गंध मे आस्फालित करती है। अतः यह कृति एक राष्ट्रीय चेतना-सम्पन्न कृति का भी रूप धारण कर लेती है।

इस लकुमा-नायिका प्रधान उपन्यास की समग्रता पर विचार करने के पूर्व इस कृति के सम्बन्ध में स्वयं कृतिकार रेड्डी जी का आरम्भिक वक्तव्य भी जान लेना महत्वपूर्ण है।

"लकुमा" एक ऐतिहासिक उपन्यास है। आन्ध्र के वैभवपूर्ण गरिमामय इतिहास में रेड्डी साम्राज्य भी अपना विशिष्ट महत्व रखता है। तेरहवीं शती मे कुमार गिरि कोंडवीडु राज्य पर शासन करते थे। उन्ही के समय का इतिहास कल्पना के परिवेश में प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास की रचना में मैंने ऐतिहासिक घटनाओं के यथार्थ की रक्षा करते हुए उसकी पुष्टि के लिए कल्पना का सहारा लिया है। अर्थात्, इसमें कल्पना का अंश भी कम नहीं है, पर इतिहास की पृष्ठभूमि मे ही उसका विस्तार हुआ है। लकुमा एक देवदासी थी। वह कुमारगिरि की प्रेयसी बनी। उसने साम्राज्य की रक्षा हेतु आत्माहुति दी। यह घटना सत्य है। शेष घटनाएँ काल्पनिक हैं। सोम-देव और गुप्तचर काल्पनिक है। शेष सभी पात्र ऐतिहासिक हैं।

लकुमा उच्च कोटि की नर्तकी थी। उसके नृत्य ने सम्राट् को नाट्यशास्त्र के प्रणयन की प्रेरणा दी। यद्यपि 'वसन्तराजीय' नामक नाट्यशास्त्र ओजपूर्ण रूप में

उपलब्ध नहीं है, तथापि उसके कई अध्याय और श्लोक यत्र तत्र उद्धृत किये गये हैं। उनके आधार पर नाट्यशास्त्र की रचना की पुष्टि होती है।

लकुमा की आत्महत्या के पश्चात सम्राट में मानसिक परिवर्तन हुआ और उन्होंने साम्राज्य के उत्थान में पूर्ववत् योग दिया।''

इस प्रकार यह विशिष्ट उपन्यास नारी चरित्र प्रधान, ललितकला वलित एवं रतिरत ऐतिहासिक कृति है। इसमे उस युग के जन जीवन का राष्ट्रप्रेम भी स्थल पर प्रकट होता है। एक देवदासी-नर्तकी को कला निपुणता, प्रीति एवं सर्वोच्च कोटि का निःस्वार्थ आत्म बलिदान इस कृति को अनुपम विशेषता है। लकुमा मूलतः भगवद् भक्ति में समर्पित एक देवदासी है। अतः लकुमा पर विचार करते समय हमें उसके इस विशिष्ट स्तर का ध्यान रखना होगा और भक्ति तथा मानवीय प्रेम की गंगा जमुनी द्वाभा में उसे समझना होगा। वह देवदासी से राजनर्तकी अथवा नृपति प्रेयसी स्वतः नहीं बनी पर बनाई गई, परन्तु बाद मे उसने अपनी कलात्मक गरिमा एवं सहज मानवी-रति के साथ अपने वर्तमान को स्वीकार किया और अपने अन्तिम क्षण तक अपने गरिमामय व्यक्तित्व के साथ जीती रही। वह जिस शान के साथ जीती रही, उससे भी अधिक शान के साथ दिवंगत भी हुई।

इस कृति को उसके भामंडल चरित्रों और घटनाओं के माध्यम से ही समझकर उसकी सम्पूर्णता से साक्षात्कार किया जा सकता है।

कथावृत्त के कतिपय बोधक सूत्र इस प्रकार हैं—

चौदहवीं शताब्दी में कर्पूर वसन्त राय उपनाम से विख्यात महाराजा कुमार गिरि रेड्डी का कोंडवीडु साम्राज्य (आन्ध्र प्रदेश का वर्तमान रायल सीमा भाग) अपनी वीरता, विद्या, कला कौशल एवं प्रजा की सुख समृद्धि के लिये विख्यात था। कुल बारह परिच्छेदों में व्याप्त यह उपन्यास इसी साम्राज्य की एक विशिष्ट घटना को प्रमुख रूप से चित्रित करता है।

कथानक का प्रारम्भ वापदला नगर के भावनारायण मन्दिर की विख्यात देवदासी नर्तकी लकुमा के दोरपा रेड्डी (सेनापति) द्वारा किये गये बलात् अपहरण से होता है। यह अपहरण सेनापति दोरपा ने अपने कला मर्मज्ञ राजा के लिए पूरी ईमानदारी और दृढ़ सात्विकता से किया था। सेनापति स्वयं चरित्रवान था। राजा ने नर्तकी लकुमा की सुन्दरता पर मुग्ध होकर और नृत्यकला में उसकी निपुणता सुन कर उसकी स्वीकृति लेकर उसे अपनी राजनर्तकी बनाया और स्वतन्त्र उपयुक्त आवास आदि की व्यवस्था भी की, उसके माता-पिता को भी साथ रहने की अनुमति दी।

राजा कुमारगिरि रेड्डी के महासेनापति काट्य वेमा रेड्डी थे। ये राजा के साले भी थे। काट्य वेमा के महासेनापतित्व में राजा कुमारगिरि अत्यन्त निश्चिन्त

राजा ने अपनी कला साधना नहीं छोड़ी और महासेनापति को ही युद्ध में अनेक बार भेजा और विजय भी प्राप्त की। राजा कुमारगिरि स्वयं परमवीर एवं अपराजेय तथा अजातशत्रु योद्धा थे, परन्तु उनका कला प्रेम और काव्यशास्त्र प्रणयन नर्तकी-प्रेयसी लकुमा के आने से उन पर पूरी तरह हावी हो गया। वे राज्य व्यवस्था एवं अन्तःपुर आदि को भूलकर लकुमा के नृत्य कला-नैपुण्य में पूर्णतया निमग्न हो गये।

कोंडवीडु में प्रतिवर्ष चैत्रोत्सव (वसन्तोत्सव) बहुत बड़े वैभव के साथ मनाया जाता था। इस वर्ष इस भव्य समारोह का प्रमुख आकर्षण नर्तकी लकुमा उत्कृष्ट कला पूर्ण बहुरंगी नृत्य रहा। समस्त दर्शकों में मुक्त कंठ से उसकी सराहना की और राजा कुमारगिरि ने तो भाव विभोर होकर लकुमा को 'राजनर्तकी' घोषित किया और बहुमूल्य हीरों के हार से उसे सम्मानित भी किया।

प्रोलाय रेड्डी ने १३२० में रेड्डी साम्राज्य की नींव डाली। रेड्डी साम्राज्य के द्वितीय सम्राट वेमा रेड्डी थे। इनके बाद अनपोता रेड्डी १३५० से १३६६ तक राज्य किया। इन्हीं के पुत्र थे कुमारगिरि।

उपन्यास के चतुर्थ परिच्छेद से राजा कुमारगिरि के प्रति मन लकुमा के अगाध आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। वे जागृत अथवा सुषुप्त, रहकर भी उसके ही ध्यान में मग्न रहने लगे। राज्य एवं अपनी प्राणप्रिया रानी से भी वे अनायास ही दूर होते चले गये। रानी मल्लाम्बिका अपने पति की इस मनःस्थिति से भीतर ही भीतर अत्यन्त विकल हो उठी। राजा रानी का आदर करते थे, पर अब वे प्रेम और कला-अनुराग से विवश थे। केन्द्र थी—चुम्बक थी स्वयं लकुमा। यहाँ यह तथ्य अत्यन्त ध्यातव्य है कि लकुमा और कुमारगिरि के सम्बन्धों का मूल आधार नृत्य कला थी। उन दोनों के प्रेम में वासना बिल्कुल न थी। भक्ति, कला और पवित्र प्रेम का समन्वय हमारे समकालीन साहित्य में प्रायः दुर्लभ है। लकुमा यदि साक्षात् नृत्य कला का अवतार थी तो राजा कुमारगिरि उस कला के अद्वितीय मर्मज्ञ एवं व्याख्याता थे। ये दोनों एक दूसरे के पूरक थे। इन दोनों में प्रेम भाव यदा कदा मांसल भी था। वह सहज था।

काट्य वेमा (महासेनापति एवं महामंत्री) तथा महारानी राजा कुमारगिरि के लकुमा.के प्रति चुम्बकीय आकर्षण से अत्यन्त चिन्तित रहने लगे। राजा समय पाते ही दिन हो या रात लकुमा के सम्पर्क में रहकर नृत्यकला पर ग्रन्थ रचना में लीन रहने लगे। कभी-कभी लम्बा एकान्तवास भी करने लगे।

शिल्पी सोमदेव ने लकुमा के अनेक नृत्य मुद्राओं का हृदय में अंकन कर अनुपम कला निकेतन का निर्माण किया। आश्चर्यकारी बात यह है कि शिल्पी सोमदेव ने लकुमा के उद्यान का माली बनकर चुपचाप उसकी नृत्य मुद्राओं को देखकर यह कार्य किया। स्वयं लकुमा को भी इस रहस्य का पता न था। इस कलानिकेतन का उद्-घाटन महोत्सव भी अपनी गरिमा रखता है। वास्तव में उत्कृष्ट शिल्पी सोमदेव ने

कलानिकेतन के निर्माण द्वारा लकुमा की नृत्यकला को मूर्त रूप दिया तो राजा कुमारगिरि ने उस कला को शास्त्रीय रूप देकर अमर कर दिया। लकुमा और कुमारगिरि में शरीर और आत्मा की एकरूपता आये बिना सारी शास्त्रीयता आकाश लोक की बात बन जाती और कला-जगत की विश्वसनीयता खो बैठती। अतः वे दोनों सहज दैहिक प्रेम में भी लिप्त थे। "लकुमा ने अपना कोमल हाथ सम्राट के कंधे पर रखा। सम्राट ने चकित होकर मुड़कर देखा—प्रणय साकार समक्ष था। अन्त में उन्होंने अपनी दोनों बाँहें फैलाकर लकुमा को कस लिया और उसकी मांगर पर चुम्बन अंकित कर दिया।" पृ० ७३।

लकुमा और कुमारगिरि के प्रणय-प्रसंगो का लालित्य और लोच इस कृति की अपनी एक निजी विशेषता है। दोनों एक-दूसरे पर कितने अनुरक्त एवं समर्पित हैं, इसके लिए उनके प्रणय सम्वादों की कतिपय पंक्तियाँ उदाहरणीय हैं—"पूर्व जन्म में तुम्हारा प्रियतम बनने का सुअवसर प्राप्त हुआ था या नही, कह नही सकता, किन्तु इस जन्म में बन सका, देवी, मैं सर्वशक्तिमान् के प्रति सदा सर्वदा कृतज्ञ रहूँगा। "प्राणेश्वर! मैं जन्म-जन्मान्तरो में भी तुम्हारी ही प्रेयसी बनने की ईश्वर से प्रार्थना करूँगी। हमारा प्रेम सहस्रों जन्मों के पश्चात् भी चिर अभिनव रहेगा।" पृ० ८१।

राजा कुमारगिरि काव्यशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र की पूर्ति के लिए लकुमा के साथ दूरवर्ती एकान्त स्थल में चले गये। काफी समय तक लकुमा की नृत्य भंगिमाएँ नाट्यशास्त्र का रूप धारण करती चली गयी। एक लम्बे समय के बाद राजा राजधानी में लौटे। राजा के इस व्यवहार से रानी मल्लाविका भीतर ही भीतर बहुत व्यथित थी। राजा के स्पष्टीकरण से वे कुछ शान्त हो जाती थी। परन्तु यह प्रणय प्रसंग कला साधना की ओर नित्यप्रति गहरा होता जा रहा है और रानी की तथा सम्पूर्ण राज्य की भरपूर उपेक्षा भी हो रही है, यह अनुभव रानी, सेनापति और प्रजा में व्याप्त होता गया। अन्ततः रानी मल्लाम्बिका ने स्वयं जाकर लकुमा को समझाया—"यह निर्णय कर लो कि देश बड़ा है या व्यक्ति? समष्टि बडी है या व्यष्टि? देश के समक्ष व्यक्ति का कोई महत्त्व नही होता। तो सुनो लकुमा! मैं अपने हृदय को पत्थर बनाकर यही कहूँगी कि तुम्हें सम्राट से जैसे भी हो अलग होना होगा।" पृ० १५४।

महारानी उक्त वक्तव्य देकर तुरन्त चली गयी। लकुमा के मन पर यह वज्राघात सा हुआ। वह राजा से और राजा उससे अपार प्रेम करते थे और एक दूसरे के बिना जीवित नही रह सकते थे। फिर भी परम स्वाभिमानिनी और देशभक्त लकुमा ने आत्म बलिदान का निर्णय लिया। लकुमा ने पूर्ण श्रृङ्गार करके प्रातः नृत्यमंडप में प्रवेश कर राजा के समक्ष अभूतपूर्व नृत्य प्रस्तुत किया, और नृत्यकाल में ही स्वयं कटार मार कर आत्महत्या कर ली। मरण की पूर्व सूचना सांकेतिक रूप में लकुमा ने नृत्य करते समय राजा को दी थी—"आपके प्रेम मे पागल होकर कहती हूँ, महा प्रभु

मेरे कहने में असत्य भी तो नहीं है। दीप बुझने से पहले एक बार खिलखिलाकर हँसता है, और फिर बुझ जाता है प्रभु।" १५६।

राजा कुमारगिरि लकुमा की मृत्यु से अत्यन्त व्यथित हुए, कटार के साथ एक रक्त क्षरित पत्र भी मिला। राजा ने कहा—

"प्राण ! तुमने राज्य को व्यक्ति से भी बड़ा माना, तुम्हारे इस त्याग का इतिहास स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जाएगा।" पृ० १५८।

"कहा जाता है—कोंडवीडु में आज भी लकुमा के नूपुरों की छूम छननन सुनाई देती है।"

किसी उपन्यास में कथावस्तु और पात्रों की ही प्रमुख भूमिका होती है, परन्तु उसकी सम्पूर्णता के लिए वातावरण, भाषा शैली और उद्देश्य को जानकर ही पुष्कल मूल्यांकन किया जा सकता है। अतः इन तत्त्वों पर भी संक्षेप में विचार कर लेना उचित होगा।

इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं—नायिका लकुमा, नायक कुमारगिरि, महासेनापति काट्य वेमा, महारानी मल्लांबिका, शिल्पी सोमदेव एवं सेनापति दोरपो। ये सभी पात्र पांखपात्र अथवा वर्ग विशेष के प्रतिनिधि पात्र न होकर चैतन्यमय व्यक्तित्ववान् पात्र हैं। ये अपने सम्बन्धों और कर्तव्यों के प्रति पूरी निष्ठा रखते हुए आवश्यकता पड़ने पर निज विवेक से स्वतन्त्र निर्णय भी लेते हैं। अतः इन सभी के व्यक्तित्व में एक अक्षय-उज्ज्वल दीप्ति है जो समग्र वातावरण को चैतन्य प्रदान करती है। ये सभी पात्र अपने-अपने स्तर पर निरन्तर अन्तः बाह्य संघर्षों से जूझते हैं एक स्फूर्त चैतन्य के साथ जीते हैं और अवसर आने पर उसी गरिमा के साथ मृत्यु का भी सहज वरण करते हैं। प्रसिद्ध उपन्यास-समीक्षक रेल्फ फाक्स ने उपन्यास को संघर्षशील मानव का चरित्र माना है। यह कसौटी इस कृति के पात्रों में सहज रूप से चरितार्थ होती है। संघर्षशील पात्र के लिए जीना या मर जाना महत्त्वपूर्ण नहीं है, अपितु एक समाजवादी एवं यथार्थ चेतना के साथ अनवरत संघर्ष करते रहना उसकी कसौटी है। 'लकुमा' उपन्यास के अधिकांश पात्र एक परम्परा या वर्गगत चेतना से ऊपर उठकर एक निर्णयात्मक संघर्ष में उतर कर निज निर्णय की शक्ति भी प्रकट करते हैं।

सर्वप्रथम उपन्यास की नायिका लकुमा के चरित्र से साक्षात्कार करना उचित होगा।

लकुमा प्रस्तुत उपन्यास की नायिका है और यह उपन्यास भी नायिका प्रधान कृति है। लकुमा मूलतः देवदासी माँ की देवदासी पुत्री है। वह सुन्दरी, युवती एवं नृत्यकला में पारंगत है और बापटला के प्रभु भावनारायण मंदिर में नियमित नृत्य करती है।

उक्त मंदिर में नृत्य करते समय लकुमा का, राजा
सेनापति द्वारा हरण किया गया फिर उसे राजा के सम्मु

के सेनापति की इस भेंट को नृत्यकला की परीक्षा करने के बाद स्वीकार कर लिया। लकुमा ने सारी परिस्थिति को समझकर स्वयं भी इस स्थिति को स्वीकार किया। राजा ने नर्तकी को एक स्वतन्त्र भवन दिया, उसके माता-पिता को भी आश्रय दिया और राजनर्तकी के सम्मान से विभूषित भी किया। यह तो हुई लकुमा के परिचयात्मक सन्दर्भ की बात। अब देखना यह है कि उसमें ऐसी कौन-कौन सी विशेषताएँ थी जिनके कारण वह अनमोल और असाधारण सिद्ध हुई। सर्वप्रथम वह अनिन्द्य सुन्दरी और अनुपम यौवनवती है। द्वितीयतः उसमें नृत्यकला की अनुपम प्रवीणता है। वह पारस्परिक नृत्यकला में नवोन्मेषवती भंगिमाएँ आविर्भूत करती है। वह प्रेम और मधुरता की देवी है। लकुमा राजा कुमारगिरि के प्रति पूर्ण समर्पित होकर आजीवन उन्हें अपना सर्वस्व मानती रही। वह पवित्र और निश्छल प्रेम का जीवन अन्तिम श्वास तक जीती रही। अपनी नृत्यकला की सम्पूर्णता के लिए मनोयोग से स्वयं को निष्णात बनाती रही। किन्तु महारानी को जब उसके और राजा के संबंधों पर अविश्वास हुआ और राज्य व्यवस्था भ्रष्ट होने का मूल कारण भी रानी ने उसी को समझा, और एकान्त में जाकर लकुमा से राजा से सदा के लिए दूर हो जाने का वचन माँगा, तब लकुमा ने आत्म सम्मान और गौरव के साथ आत्महत्या भी कर ली। यह सर्वोच्च निःस्वार्थ त्याग भी किया।

नायिका लकुमा के उक्त गुणों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए कतिपय प्रसंगों एवं उद्धरणों की अवतारणा वांछनीय है। लकुमा के लावण्य एवं नृत्य के विषय में दोरपा सेनापति का यह कथन महत्वपूर्ण है।—"देवागनाओं को भी पराजित करने वाली लावण्यमयी सुन्दरी अपनी आराध्य की अर्चना करते हुए पूजा-नृत्य में तन्मय थी।" पृ० ५।

लकुमा में सतीत्व और आत्मगौरव था। उसने अपहरण कर्ता का विरोध किया, "लज्जा नही आती नारी का स्पर्श करते ?" सेनापति के उत्तर से वह आश्वस्त हुई—"देवि मैं ऐसा नीच नहीं हूँ। मैं नारी का सम्मान करना जानता हूँ। तुम्हारे पवित्र चरित्र पर कलंक नही लगने दूँगा। मुझ पर विश्वास करो।" पृ० ८। लकुमा परिस्थिति की नवीनता, सार्थकता एवं भव्यता के साथ विवेक के साथ मैत्री कर लेती थी। उसने देवदासी की स्थिति से राजनर्तकी स्थिति में कला, विविधता और उच्छल जीवन का अनुभव किया और उसे स्वीकार किया। "वह भूत और वर्तमान को तोल कर देखने लगी कि कौन अधिक है। उसे अपने अतीत जीवन की नीरसता खटकने लगी। वर्तमान पर पग रखते ही अतीत का यथार्थ विचित्रता मे परिवर्तित हो गया। जीवन में परिवर्तन अवश्यंभावी है। उसकी गति को कोई रोक नहीं सकता, इसीलिए व्यक्ति क्या से क्या होता जाता है। यह परिवर्तन सुखद भी हो सकता है और दुखद भी। परिवर्तन मे नवीनता होती है। नवीनता मनुष्य में उत्साह भरती है। उत्साह से जीवन मे रुचि बढ़ती है।" पृ० २०।

मेरे कहने में असत्य भी तो नहीं है। दीप बुझने से पहले एक बार खिलखिलाकर हँसता है, और फिर बुझ जाता है प्रभु।" १५६।

राजा कुमारगिरि लकुमा की मृत्यु से अत्यन्त व्यथित हुए, कटार के साथ एक रक्त क्षरित पत्र भी मिला। राजा ने कहा—

"प्राण ! तुमने राज्य को व्यक्ति से भी बड़ा माना, तुम्हारे इस त्याग का इतिहास स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जाएगा।" पृ० १५६।

"कहा जाता है—कोंडवीडु में आज भी लकुमा के नूपुरों की छुम छननन सुनाई देती है।"

किसी उपन्यास में कथावस्तु और पात्रों की ही प्रमुख भूमिका होती है, परन्तु उसकी सम्पूर्णता के लिए वातावरण, भाषा शैली और उद्देश्य को जानकर ही पुष्कल मूल्यांकन किया जा सकता है। अतः इन तत्त्वों पर भी संक्षेप में विचार कर लेना उचित होगा।

इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं—नायिका लकुमा, नायक कुमारगिरि, महासेनापति काट्य वेमा, महारानी मल्लांबिका, शिल्पी सोमदेव एवं सेनापति दोरपा। ये सभी पात्र शवपात्र अथवा वर्ग विशेष के प्रतिनिधि पात्र न होकर चैतन्यमय व्यक्तित्ववान् पात्र हैं। ये अपने सम्बन्धों और कर्तव्यों के प्रति पूरी निष्ठा रखते हुए आवश्यकता पड़ने पर निज विवेक से स्वतन्त्र निर्णय भी लेते हैं। अतः इन सभी के व्यक्तित्व में एक अक्षय-उज्ज्वल दीप्ति है जो समग्र वातावरण को चैतन्य प्रदान करती है। ये सभी पात्र अपने-अपने स्तर पर निरन्तर अन्तः बाह्य संघर्षों से जूझते हैं एक स्फूर्त चैतन्य के साथ जीते हैं और अवसर आने पर उसी गरिमा के साथ मृत्यु का भी सहज वरण करते है। प्रसिद्ध उपन्यास-समीक्षक रेल्फ फाक्स ने उपन्यास को संघर्षशील मानव का चरित्र माना है। यह कसौटी इस कृति के पात्रों में सहज रूप से चरितार्थ होती है। संघर्षशील पात्र के लिए जीना या मर जाना महत्त्वपूर्ण नहीं है, अपितु एक समाजवादी एवं यथार्थ चेतना के साथ अनवरत संघर्ष करते रहना उसकी कसौटी है। 'लकुमा' उपन्यास के अधिकांश पात्र एक परम्परा या वर्गगत चेतना से ऊपर उठकर एक निर्णयात्मक संघर्ष में उतर कर निज निर्णय की शक्ति भी प्रकट करते हैं।

सर्वप्रथम उपन्यास की नायिका लकुमा के चरित्र से साक्षात्कार करना उचित होगा।

लकुमा प्रस्तुत उपन्यास की नायिका है और यह उपन्यास भी नायिका प्रधान कृति है। लकुमा मूलतः देवदासी माँ की देवदासी पुत्री है। वह सुन्दरी, युवती एवं नृत्यकला में पारंगत है और बापटला के प्रभु भावनारायण मंदिर में नियमित नृत्य करती है।

उक्त मंदिर में नृत्य करते समय लकुमा का, राजा कुमारगिरि के दोरपा नामक सेनापति द्वारा हरण किया गया फिर उसे राजा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। राजा

के सेनापति की इस भेंट को नृत्यकला की परीक्षा करने के बाद स्वीकार कर लिया। लकुमा ने सारी परिस्थिति को समझकर स्वयं भी इस स्थिति को स्वीकार किया। राजा ने नर्तकी को एक स्वतन्त्र भवन दिया, उसके माता-पिता को भी आश्रय दिया और राजनर्तकी के सम्मान से विभूषित भी किया। यह तो हुई लकुमा के परिचयात्मक सन्दर्भ की बात। अब देखना यह है कि उसमें ऐसी कौन-कौन सी विशेषताएँ थी जिनके कारण वह अनमोल और असाधारण सिद्ध हुई। सर्वप्रथम वह अनिन्द्य सुन्दरी और अनुपम यौवनवती है। द्वितीयतः उसमें नृत्यकला की अनुपम प्रवीणता है। वह पारस्परिक नृत्यकला में नवोन्मेषवती भंगिमाएँ आविर्भूत करती है। वह प्रेम और मधुरता की देवी है। लकुमा राजा कुमारगिरि के प्रति पूर्ण समर्पित होकर आजीवन उन्हें अपना सर्वस्व मानती रही। वह पवित्र और निश्छल प्रेम का जीवन अन्तिम श्वास तक जीती रही। अपनी नृत्यकला की सम्पूर्णता के लिए मनोयोग से स्वयं को निष्णात बनाती रही। किन्तु महारानी को जब उसके और राजा के संबंधों पर अविश्वास हुआ और राज्य व्यवस्था भ्रष्ट होने का मूल कारण भी रानी ने उसी को समझा, और एकान्त में आकर लकुमा से राजा ने सदा के लिए दूर हो जाने का वचन माँगा, तब लकुमा ने आत्म सम्मान और गौरव के साथ आत्महत्या भी कर ली। यह सर्वोच्च निःस्वार्थ त्याग भी किया।

नायिका लकुमा के उक्त गुणों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए कतिपय प्रसंगों एवं उद्धरणों की अवतारणा वांछनीय है। लकुमा के लावण्य एवं नृत्य के विषय में दोरपा सेनापति का यह कथन महत्वपूर्ण है।—"देवागनाओं को भी पराजित करने वाली लावण्यमयी सुन्दरी अपनी आराध्य की अर्चना करते हुए पूजा-नृत्य में तन्मय थी।" पृ० ५।

लकुमा में सतीत्व और आत्मगौरव था। उसने अपहरण कर्त्ता का विरोध किया, "लज्जा नहीं आती नारी का स्पर्श करते?" सेनापति के उत्तर से वह आश्वस्त हुई—"देवि मैं ऐसा नीच नहीं हूँ। मैं नारी का सम्मान करना जानता हूँ। तुम्हारे पवित्र चरित्र पर कलंक नहीं लगने दूँगा। मुझ पर विश्वास करो।" पृ० ८। लकुमा परिस्थिति की नवीनता, सार्थकता एवं भव्यता के साथ विवेक के साथ मैत्री कर लेती थी। उसने देवदासी की स्थिति से राजनर्तकी स्थिति में कला, विविधता और उच्छल जीवन का अनुभव किया और उसे स्वीकार किया। "वह भूत और वर्तमान को तोल कर देखने लगी कि कौन अधिक है। उसे अपने अतीत जीवन की नीरसता खटकने लगी। वर्तमान पर पग रखते ही अतीत का यथार्थ विचित्रता में परिवर्तित हो गया। जीवन में परिवर्तन अवश्यंभावी है। उसकी गति को कोई रोक नहीं सकता, इसीलिए व्यक्ति क्या से क्या होता जाता है। यह परिवर्तन सुखद भी हो सकता है और दुखद भी। परिवर्तन में नवीनता होती है। नवीनता मनुष्य में उत्साह भरती है। उत्साह से जीवन में रुचि बढ़ती है।" पृ० २०।

लकुमा आजीवन अविवाहित रही। उसने विवाह को जीवन-विकास की स्वतंत्रता को सबसे बड़ी बाधा माना। उसने अपनी माँ के आग्रह पर स्पष्ट कहा, "लेकिन फिर मुझे कन्या का जीवन प्राप्त नहीं होगा, माँ ! मेरी इच्छाएँ-मेरी आकांक्षाएँ एक व्यक्ति में केन्द्रित हो जाएँगी। उसी को लेकर मेरी दुनिया बनेगी, दुनिया मिटेगी। उसी में लीन हो जाना जीवन का लक्ष्य होगा।" पृ० २३। यह था लकुमा का अंतिम निर्णय। प्रजा, कला विशेषज्ञ-वर्ग और राजा के हृदयों में लकुमा की नृत्यकला की प्रतिक्रिया की एक झलक द्रष्टव्य है—"राज्य की सुविख्यात नर्तकियों के नृत्य देखने का अवसर उन्हें अनेक बार प्राप्त हुआ था। परन्तु इस नर्तकी के हाव-भाव, भ्रू भंगिमाएँ, अंगुलियों का संचालन, अंगों का परिचालन आदि अनुपम, अद्भुत एवं अनन्य लगे। प्रेक्षकों के हृदय अनिर्वचनीय आनन्द से झूम उठे।" पृ० २६।

"लकुमा के नृत्य ने कुमारगिरि के मनमयूर को जगा दिया। वे सोचने लगे; मैं जिस शास्त्र का प्रणयन करना चाहता हूँ वह तो लकुमा के व्यक्तित्व में विद्यमान है। केवल उसे पढ़ने, संवारने और अक्षरों में अंकित करने की जरूरत है।" पृ० ३७।

नर्तकी और सम्राट का साहचर्य समीप से समीपतर होता गया। एक की अनुपस्थिति दूसरे की निकटता की कामना करने लगी। वह अन्तर में बस गयी और अन्तरंग हो गयी। धीरे धीरे सम्राट और लकुमा के जीवन के दो ही लक्ष्य हो गये थे—एक तो नृत्य का प्रदर्शन और अवलोकन और दूसरा दैहिक सुख भोग।" पृ० ६७।

सम्राट के प्रणय-पाश में परिबद्ध एवं रति तरंग में तल्लीन लकुमा के ये उद्‌गार उसके राग रंजित हृदय के उज्ज्वल पार्श्व को व्यक्त करते हैं—"हृदयेश्वर ! प्यार का सागर ऐसा गहरा, ऐसा विशाल और ऐसी उत्ताल तरंगों वाला होता है, यह मैंने आपके सहवास से ही जाना, अनुभव किया और कल्पना में बाँधा।" पृ० ८६। सम्राट ने भाव विभोर होकर लकुमा से कहा,

"मेरे हृदय की अधिष्ठात्री देवी ! मैं कब का तुम्हारे प्रेम का दास बन चुका हूँ।" पृ० ६२।

जिस लकुमा ने सम्राट और साम्राज्य के जीवन में अपनी सम्पूर्णता समर्पित कर दी और सबका अपार स्नेह और आदर भी पाया, उसी लकुमा की नियति अन्ततः ऐसी बदली कि उसने आत्म बलिदान से मृत्यु को भी पराजित कर दिया और अपनी निष्काम उच्चता का न भूतो न भविष्यति उदाहरण प्रस्तुत किया।

सम्राट् कुमारगिरि

विशाल कोंडवीडु साम्राज्य के सम्राट् कुमारगिरि रेड्डी का चरित्र अनेक विशेषताओं और असंगतियों से परिव्याप्त संश्लिष्ट चरित्र है। उनमें अद्भुत बल वीरता, युद्ध कौशल और प्रशासनिक क्षमता है। वे एक सुकवि एवं ललित कला मर्म..

एवं प्रणेता हैं। उन्हे अपनी रानी एवं परिवार का प्रेम और आदर प्राप्त है। उनकी प्रजा भी उन्हे पूरी आस्था से चाहती है। यह सम्राट् कुमारगिरि के जीवन का शुक्ल पक्ष है। इसके साथ ही उनकी कुछ चारित्रिक सीमाएँ भी हैं। वे नर्तकी के कलाकौशल से आकृष्ट होकर धीरे-धीरे उसके प्रेमपाश मे ऐसे जकड गए कि राज्य व्यवस्था और अपनी रानी की भी घोर उपेक्षा करने लगे। उनका नृत्यकला प्रेम, सौन्दर्य प्रेम धीरे-धीरे विलास में भी परिणत हो गया। उनका यह सब आचरण प्रजा और पारिवारिक जनो के लिए, विशेषतः रानी मल्लाम्बिका के लिए गहरी चिन्ता का विषय बन गया। अन्ततः मल्लाम्बिका ने युक्तिपूर्वक योजना बनायी और लकुमा को आत्महत्या करनी पड़ी। इसका प्रभाव कुमारगिरि पर बहुत अधिक पड़ा। वे बहुत दुःखी हुए। लकुमा के गुणों की और त्याग की मुक्तकंठ से प्रशंसा भी की। इस घटना के बाद राजा कुमारगिरि अपने राज्य व्यवस्था सम्बन्धी कार्य मे पूर्णतया जुट गये। नाट्यशास्त्र का प्रणयन वे कर ही चुके थे।

अन्ततः यह स्पष्ट है कि मानव के जीवन में उतार-चढाव और मोड आते हैं और वह इन सबसे प्रभावित भी होता ही है। परन्तु अवसर पाते ही अपनी पूरी शक्ति के साथ संघर्ष करता है और अपनी स्खलिति को भी सुधारता है।

वस्तुतः कुमारगिरि और लकुमा के चरित्रों मे प्रेम और कर्त्तव्य का संघर्ष है और अन्ततः कर्त्तव्य विजयी होता है। प्रेम भौतिक स्तर पर पराजित होकर भी सचमुच अविस्मरणीय और अपराजेय रहा।

महारानी मल्लाम्बिका

महारानी मल्लाम्बिका सम्राट् कुमारगिरि की पत्नी थी। महासेनापति काट्य वेमा रेड्डी की ये बहिन थी। एक सुयोग्य पत्नी, रानी एवं नारी के सभी गुण उनमें थे। पति का भी अपार प्रेम और विश्वास उन्हे प्राप्त था। वे साम्राज्य की व्यवस्था में भी अपने पति को सदा वैचारिक सहयोग देती थी। वे उच्चकोटि की पतिव्रता नारी थी। उनका भाई कोडवीडु साम्राज्य का महासेनापति था, इससे वे परम निश्चिन्त थीं। वे सदा अपने पति के कला प्रवण चित्त को राज्य से विचलित होने से रोकती रहती थीं। राजा प्रायः राज्य संरक्षण की अपेक्षा नृत्य एवं अन्य कलाओं को अधिक महत्त्व देते थे और प्रायः एकान्तवास भी करते थे। इससे मल्लाम्बिका बहुत चिंतित थी—"साम्राज्ञी मल्लांबिका के मन मे यह सन्देह उत्पन्न होने लगा कि कहीं सम्राट् ने विरक्त होकर राज्य त्याग तो नही कर दिया, अथवा बुद्ध की भाँति तपस्या करने तो नही निकल गये।" पृ० ४४।

जब से लकुमा कुमारगिरि के सम्पर्क मे आयी, तब से विशेष रूप से राज्य व्यवस्था और महारानी मल्लाम्बिका की स्थिति पर विपरीत प्रभाव बढ़ता ही गया।

रानी स्वयं के विषय में और राज्य के विषय में काफी जिम्मेदारी के साथ सोचती थीं।

काट्य वेमा (ज्येष्ठ भ्राता) के विवाह के अवसर पर राजा सीधे विवाह मंडप में बाहर से आ रहे हैं। महारानी मल्लांबिका की अपने पति के प्रति जो मनस्थिति है, उसकी उच्चता और सात्विकता कितनी प्रोज्ज्वल है, देखिए—"आज महाराज के दर्शन होंगे। ओह! उनको देखे कितने दिन हो गये। लगता है युग बीत गये। मेरी ओर महाराज की वही शीतल दृष्टि उठेगी। उनकी अनुकम्पा पूर्ववत् मुझ पर बनी रहेगी। मेरा हृदय धड़क रहा है। सम्राट् को देखकर कहीं मैं द्रवित न हो उठूं। इस शुभ वेला में मेरे नयनों से अश्रु नहीं गिरने चाहिए। नहीं, मैं ऐसा अभद्र व्यवहार न करूँगी। मैं सदा उनकी मंगल कामना ही करूँगी। पतिव्रता नारी का यही कर्तव्य है।" पृ० ८५। महारानी में परम्परा-पालन और यथावसर महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने की अद्भुत क्षमता थीं। वे अपने पति के मनचलेपन की भी चिन्ता करके भी उनके प्रति अपने कर्त्तव्य का सदा निर्वाह करती थी। कर्त्तव्य के प्रति ऐसी उत्कट एकाग्रता और वह भी मानसिक जर्जरता की दशा में, अन्यत्र दुर्लभ है।

विवाहोपरान्त राजा रानी को अन्तःपुर में भेजकर पुनः विलास भवन में चले गये। —"सम्राट् ने सम्राज्ञी को अन्तःपुर के प्रधान द्वार तक पहुँचाया और आप विलास प्रासाद की ओर रवाना हो गये। पृ० ८७।

महारानी ने युद्ध के समय स्वयं राज्य की रक्षा और व्यवस्था का भार अपने ऊपर लिया और अपने भाई काट्य वेमा (महासेनापति) को समरांगण में भेजा। अवसर आने पर राज्य सभा का कुशल संचालन भी किया। शिल्पी सोमदेव का स्मारक भी बनवाया।

अन्ततः महारानी मल्लांबिका ने राज्य रक्षा के महत्त्व को ध्यान में रखकर लकुमा को राजा से सदा के लिए दूर कर देने का संकल्प किया। वे एकान्त में उससे मिली। उन्होंने लकुमा से स्पष्ट कहा व्यक्ति से समाज और देश बड़ा होता है। तुम्हारे कारण राजा विलासी हो गये हैं अतः तुम्हें सदा के लिए उनका साथ छोड़ना होगा। लकुमा ने भी अपने कर्त्तव्य को समझा और भरी सभा में आत्महत्या कर ली।

स्पष्ट है कि महारानी मल्लाबिका सुयोग्य पतिव्रता पत्नी, कुशल महारानी, दृढ़संकल्पवती और कर्त्तव्यपरायणा थी। वे प्रेम से भी अधिक कर्त्तव्य को महत्त्व देती थी। महारानी का यह वाक्य उनके आदर्श चरित्र का परिचायक प्रमाण है—

"तो सुनो लकुमा! मैं अपने हृदय को पत्थर बनाकर यही कहूँगी कि तुम्हें सम्राट् से जैसे भी अलग होना होगा।" पृ० १५४।

महासेनापति काट्य वेमा

श्री काट्य वेमा रेड्डी कोंडवीडु साम्राज्य के महासेनापति थे। उनकी छोटी बहिन मल्लांबिका महाराज कुमारगिरि को ब्याही गयी थी और वह महारानी के पद पर आसीन थीं। काट्य वेमा वस्तुतः कोंडवीडु साम्राज्य की रीढ़ की हड्डी थे। महाराज का भी उन पर अटूट विश्वास था। वे ईमानदार, वीर योद्धा, सेनापति, कलाकार एवं राज्यरक्षक थे। एक पूर्णतया समर्पित महासेनापति के सभी लक्षण काट्य वेमा में थे। "काट्य वेमा अपने बल के प्रभाव से शान्ति और सुरक्षा कायम करने में सर्वथा सफल थे।" पृ०२ ५।

"कुमारगिरि के प्रधान सेनापति और मंत्री काट्य वेमा रेड्डी बल, पराक्रम और राजनीति के क्षेत्र में चतुर माने जाते थे। कवि पंडितों और कलाकारों का उचित सम्मान करते थे। वे स्वयं उच्चकोटि के विद्वान थे, उन्होंने कालिदास के नाटक त्रय की व्याख्या की। यह व्याख्या 'कुमारगिरि राजीयम्' नाम से विख्यात है।

"कुमारगिरि त्यागी और भोगी थे। अपना अधिकांश समय साहित्य की रचना में बिताते थे। परन्तु काट्य वेमा अपनी पुतली की भाँति राज्य की रक्षा मे सजग रहे।" पृ० ३६।

विलास में और कला साधना में तल्लीन राजा कुमारगिरि को समझाते हुए—कर्तव्य बोध कराते हुए महासेनापति काट्य वेमा और राजा के मध्य हुए इस वार्तालाप से भी काट्य के चरित्र की उज्ज्वलता प्रकट होती है—

"प्रभु! आप वीणावादन का आनन्द ले रहे हैं। उधर देश पर शत्रु आक्रमण करने को दांत लगाये बैठा है।"

"काट्य! बलिहरी राग कैसा मनमोहक है। इसकी ध्वनि हृदय में आनन्द की तरंगें पैदा कर देती है। इतने दिनों की साधना के बाद आज मैं इस राग पर अधिकार कर पाया हूँ। आज का दिन कितना सुखद है।"

"राजन! आपको यह क्या हो गया, युद्ध के समय संगीत की लहरियों मे खो रहना कहाँ तक उचित है? भेरियों के निनाद सुनवाइए। सैनिको का कोलाहल, हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, रथों की धड़धड़ाहट और तलवारों की झनझनाहट का स्वागत करने को उत्सुक रहिए।"

"सेनापति! संगीत की मधुरिमा के स्थान पर वह कर्कश ध्वनि मुझे पसन्द नहीं।"

"राजन्! युद्ध के समय विनोद की आकांक्षा वांछनीय है और राजनीति के विरुद्ध भी है………।

"काट्य वेमा ! अनधिकार चेष्टा न करो । मेरे आदेश का पालन करो। सेनापति का यही कर्त्तव्य है ।"

"प्रभु ! आप असाधारण वीर और अरिभंजक हैं । अचानक आप में ऐसा परिवर्तन क्यों हुआ ?"

"मैं तुमको सम्राट् के पूरे अधिकार देता हूँ, जाओ, मैं एकान्त चाहता हूँ।"

इस संवाद से राजा कुमारगिरि और काट्य वेमा के स्वभाव स्पष्ट हो जाते हैं । काट्य वेमा ने उक्त स्थिति के बावजूद सदा साम्राज्य को विजय दिलायी और आजीवन उसके प्रति निष्ठावान् रहा ।

काट्य वेमा ने अनेक बार गहरे अन्तर्द्वन्द्व का सामना किया । कुमारगिरि एक बार भरी सभा को सहसा छोड़कर लकुमा के विलास कक्ष में चले गये । इसका बहुत अपमानजनक प्रभाव पड़ा । तब काट्य वेमा की विवशता असह्य हो उठी— "मैं मन्त्री हूँ, सेनापति हूँ, किन्तु उनका सेवक हूँ । वे मेरे स्वामी हैं । राजमर्यादा का स्पष्ट इंगित है कि सेवक स्वामी के आदेश का पालन करे । स्वामी हर प्रकार से योग्य हो ।" पृ० १५० ।

सोमदेव

'लकुमा' उपन्यास के प्रतिनिधि पात्रों मे सोमदेव शिल्पी का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है । वह मूर्तिकला मे पारंगत है और अपनी कलात्मक अभिरुचि की पूर्ति के लिए अत्यन्त कष्टसाध्य एवं त्यागपूर्ण स्थितियों से भी वह गुजरना जानता है । नर्तकी एवं परम सुन्दरी लकुमा की विभिन्न नृत्य भगिमाओं को मूर्तित करने के लिए सोमदेव को लकुमा के उद्यान का माली बनना पड़ा । उसने स्वयं को गुप्त रखा । धीरे-धीरे वह लकुमा के उद्यानगत नृत्यों को अपने मन में उतार कर मूर्त रूप देता गया और अपना कलानिकेतन निर्मित किया । विशाल कलानिकेतन निर्मित हो गया, परन्तु स्वयं राजा और लकुमा को भी पता न चला । बाद में सोमदेव के कलापूर्ण घर पर राजा की दृष्टि पड़ी । उसी समय लकुमा की भव्य मूर्ति देखकर राजा हर्षपूर्ण आश्चर्य से भर गये । बाद मे कला निकेतन का उद्‌घाटनादि हुआ । शिल्पी सम्मानित भी हुआ ।

राजा कुमारगिरि ने लकुमा की नृत्यकला से नृत्यशास्त्र की रचना की तो सोमदेव ने मूर्ति कलात्मक कला निकेतन निर्मित किया । दोनों की कलाओं का आधार लकुमा रही, परन्तु सोमदेव ने जिस विषय परिस्थिति मे और अपने कला-आलम्बन से सर्वथा अपरिचित रहकर अपना कार्य किया, वह तो अनुपम ही है । सोमदेव विशुद्ध एवं निस्वार्थ कला प्रेमी है ।

आगे चलकर सोमदेव लकुमा के प्रति अपने मन मे कुछ भावुक प्रेम का अनुभव करने लगा । और कुछ अर्द्ध विक्षिप्त सा हो गया । एक रात वह एक बहमनी राज्य के गुप्तचर से मिलकर धन और लकुमा को पाने के लिए राज्य के रहस्य बताने को

तैयार हो गया। गुप्तचर शत्रु का है, यह ज्ञात होते ही वह गुप्तचर को मारने के लिए तैयार हो गया। वह देशभक्त था। गुप्तचर और सोमदेव के देशद्रोही वार्तालाप को स्वयं गुप्त वेश धारण किये हुए महारानी ने सुन लिया था। अतः तुरन्त दोनों को बन्दी बना लिया गया। बन्दीगृह में मुसलमान गुप्तचर ने रहस्योद्घाटन के भय से सोमदेव की हत्या कर दी।

प्रातः होने पर राज्यसभा में रानी ने सारी घटना सभासदों को सुनायी। दोनों को मृत्युदण्ड देने का निर्णय हुआ। परन्तु सोमदेव की पत्नी ने अपने पति के विषय में चिल्ला-चिल्ला कर कहा कि वे देशद्रोही कभी न थे। कभी-कभी विक्षिप्त से होकर बोलने लगे थे। इसी प्रकार कहते-कहते उसने दीवार से सर मारकर अपने प्राण दे दिये। विचित्र बात यह हुई कि सोमदेव को बन्दीगृह में शत्रु-जासूस द्वारा पहले ही मारा जा चुका था। यह घोषणा रानी ने दी। बाद में सोमदेव की सचाई, कलानिपुणता और देशभक्ति को सभी ने सराहा। यह निर्णय भी लिया गया कि सोमदेव का एक भव्य स्मारक बनाया जाय। यह मरणोपरान्त राजकीय सम्मान सोमदेव को मिला।

प्रकृति का न्याय और मानवीय स्वार्थ कितने विचित्र हैं कि लकुमा जैसे उत्कृष्ट नर्तकी और पवित्र प्रेमिका को जो सर्वथा निरपराध थी, आत्महत्या करनी पड़ी। तो दूसरी ओर दूसरे कलाकार शिल्पी सोमदेव और उसकी पत्नी का प्रशासनिक नादानी के कारण मरण हुआ।

अतः सोमदेव का चरित्र उत्कृष्ट कला, प्रेम एवं बलिदान से परिपूर्ण है और अजरामर भी।

इस उपन्यास की भाषा और शैली प्रायः सर्वत्र विषयानुकूल एवं पात्रानुकूल रही है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का तथा यथावसर उर्दू शब्दो का भी प्रयोग हुआ है। शैली समास-व्यास शैलियों का मिश्रित रूप रही है।

देशकाल का चित्रण सहज एवं विषयोद्बोधक है। स्थानीय विशिष्ट रूढ़ियों और रीतिरिवाजों का समुचित समायोजन हुआ है।

जहाँ तक उद्देश्य की बात है, यह कृति विशेष रूप से नारी पात्रों के माध्यम से कला, प्रेम, कर्त्तव्यपालन और सर्वोच्च त्याग का सहज उदाहरण प्रस्तुत करती है।



प्रोफेसर

"प्रोफेसर" श्री बालशौरि रेड्डी का दसवाँ और एक प्रशस्त सामाजिक उपन्यास है। यह उच्च मध्यवर्गीय समाज के अत्यन्त सुशिक्षित एवं प्रबुद्ध व्यक्तियों की जीवन की आकांक्षाओं, ग्रन्थियों एवं बौद्धिकता से सम्बन्धित कृति है। इसमें एक ओर सीतापति एवं उमापति जैसे प्रौढ़ वय के वकील एवं प्रोफेसर हैं, तो दूसरी ओर रीडर सुधाकर एवं अनुसन्धाता विमल जैसे युवावर्ग के व्यक्ति हैं। एक तीसरा वर्ग है महिलाओं का जिसमें प्रोफेसर उमापति की शालीन पत्नी, सुधाकर की सुशिक्षित किन्तु अत्यन्त तर्कजीवी एवं अधिकारवादिनी सुन्दरी पत्नी सुधा और आनन्द की बहन रेवती है।

सुख दुःख प्रायः निकटवर्ती सापेक्षता से अधिक जुड़े हुए होते हैं। सुख-दुःख तुष्टि और असन्तोष को भी इसी सन्दर्भ में देखा जा सकता है। हमेशा हम अपने पड़ोसी और रिश्तेदारों या सहकर्मियों या पड़ौसी देशों से अधिक होड़ या स्पर्धा का भाव रखते हैं। उदाहरण के लिये भारत को रूस, अमेरिका और इङ्गलैण्ड की अत्यधिक प्रगति से उतना कष्ट नहीं होता, जितना कि पाकिस्तान, चीन, नेपाल, बंगलादेश और श्रीलंका की प्रगति से। प्रस्तुत उपन्यास अलग-अलग आयु वर्गों की मनोग्रन्थियों में संघर्ष करता हुआ उपन्यास है। एक ही क्षेत्र के दो जोड़ों की मनोदशा का सुन्दर और वैषम्यपूर्ण चित्रण इस कृति की एक निजी विशेषता है। प्रोफेसर उमापति अधेड़ उम्र के हैं, उत्कृष्ट कोटि के विद्वान हैं और अपनी पत्नी के प्रति अपार स्नेह रखते हैं। वे यदा-कदा पारिवारिक बातों में विस्मरणशील हैं। उनकी पत्नी सुन्दर और योग्य है। वे सदा अपने पति को गौरव देती है और उनकी विद्वत्ता का सम्मान करती है। वे एक सुयोग्य भारतीय नारी है। वे मनोग्रन्थियों से ऊपर उठी हुई आदर्श भारतीय पत्नी है। तो दूसरी ओर रीडर आनन्द और उनकी सुशिक्षित, सुन्दरी पत्नी सुधा में कुतर्क, दुराग्रह और उच्चता ग्रन्थि की इतनी अतिशयता है कि वे दोनों प्रायः निरन्तर अतिसाधारण बातों पर भी घंटों बहस करके एक दूसरे को स्वयं से छोटा और अपराधी सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। दोनों पारिवारिक सुख-शान्ति की ओर आपसी समझ की उपेक्षा करते है। एक दूसरे को समझकर भी वे पुनः अपने अहंकार जन्य बौद्धिक कुतर्कों की अंधी गुफा में खो जाते हैं। सुधा अपनी सांसारिक लालसाओं और विदेश भ्रमण की कामना की पूर्ति होती न देख अत्यन्त हताश होकर नींद की अधिक गोलियाँ खाकर आत्महत्या कर लेती है।

आनन्द जब प्रोफेसर पद की नियुक्ति का पत्र और इङ्गलैंड-यात्रा की खुश-

खबरें लेकर सुधा को खोजता हुआ घर आता है, तब तक तो उसकी पत्नी चल बसी है। क्रूर नियति की इस कठोर पदचाप के साथ इस उपन्यास का अन्त होता है।

बुद्धि विश्लेषण करती है और हृदय अथवा प्रेम संश्लेषण करते हैं। एक दूसरे को समझने के लिए, दूसरे की जीवनदृष्टि को सहृदयता से समझना होगा, तभी वह समझ में आयेगी। अतः हम दूसरों पर स्वयं को थोपना बन्द करें। यह कृति तर्क से समझ की ओर मृत्यु से जीवन की ओर तथा सिद्धान्त से व्यवहार की ओर जीवन को ढालने का जीवन्त भाव पाठकों में प्रक्षेपित करती है। आनन्द और सुधा इस कृति के केन्द्र हैं।

"प्रोफेसर" उपन्यास कुल १३ परिच्छेदों में आस्फालित श्री बालशौरि रेड्डी का सन् १९७१ में रचित दसवां उपन्यास है।

सम्पूर्ण उपन्यास का कथासूत्र-क्रम इस प्रकार है—प्रथम परिच्छेद में सीतापति नायुडु एक प्रख्यात वकील के रूप में आते हैं। अपने नारायण स्वामी का एक जायदाद सम्बन्धी मुकदमा उनके हाथ में है। कुछ पता लगाने वे मु-मुकुरु जाते हैं और एक डाक बंगले में वहाँ ठहर जाते हैं। वहाँ सुब्बलु नाम की एक लड़की उनकी सेवा करती है और उन्हें मुकदमे के कुछ तथ्य भी बताती है। वह हत्यारे कोडय्या का भी नाम बताती है। यह वृत्त यहीं प्रायः रुक जाता है।

सीतापति विधुर हैं। उनके एक पुत्र (आनन्द) और एक पुत्री रेवती है। सबके विवाह हो चुके हैं। आनन्द की पत्नी सुधा एम० ए० है और सुन्दर है। आनन्द मद्रास विश्वविद्यालय मे प्रवक्ता है। आनन्द और सुधा मे प्रतिदिन किसी न किसी बात पर लम्बा और कटुतापूर्ण विवाद होता है। आनन्द प्रायः घर विलम्ब से लौटता है और पत्नी के साथ घूमना, वार्तालाप करना, सिनेमा जाना आदि नहीं करता और उसे हीन भी समझता है। पत्नी भी अपने पास का भरपूर समर्थन करती है।

विमल एक शोधार्थी है जो आनन्द का शिष्य है। उसका आनन्द के घर आना जाना होता रहता है। सुधा भी उसे स्नेहपूर्वक देखती है। धीरे-धीरे विमल को रूस जाने का अवसर प्राप्त होता है। इससे सुधा को जलन होती है कि मेरे पति प्रवक्ता होकर भी विदेश नहीं जा पा रहे हैं। आनन्द रीडर बन जाते हैं।

आनन्द के पिता अपनी अच्छी वकालत छोड़कर अपने पुत्र के साथ रहने लगे। अब आनन्द की महत्वाकांक्षा एक सुन्दर निजी मकान बनाने की हुई। प्लान बना और पिता सीतापति ने मकान की देखरेख का काम सम्हाल लिया। बीच-बीच में सीतापति, आनन्द और सुधा में लम्बी बहस भी चलती रही। मकान बन गया।

आनन्द में प्रोफेसर बनने की उत्कट लालसा जागी। वह किसी भी कीमत पर प्रोफेसर हो जाना चाहता था। वह अपने प्रोफेसर को खूसट, बुड्ढा, स्वार्थी, पक्षपाती आदि समझता था। अपना हितैषी न मानता था। छात्रों और अपनी पत्नी के सामने प्रो० उमापति की निन्दा भी करता था।

एक दिन प्रो० उमापति के घर आनन्द गया। उसने वहाँ चुपके से उमापति जी के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनी और सिफारिश की बात भी सुनी। तब उसे अपनी क्षुद्रता का ज्ञान हुआ। तबसे आनन्द प्रो० उमापति का सच्चा प्रशंसक बन गया। आनन्द शंकालु एवं अहंकारी स्वभाव के कारण प्रायः व्यक्तियों को समझने में भूल करता है। अपने पिता और पत्नी के विषय मे भी आनन्द ने यही किया।

इसके पश्चात् आनन्द का घर बन गया गृह प्रवेशोत्सव हुआ। आनन्द-सुधा का लम्बा और कटु संवाद हुआ। सीतापति को पक्षाघात की लम्बी बीमारी और अन्ततः उनकी मृत्यु। यहाँ भी आनन्द मृत्यु से पूर्व पिता से वसीयतनामा लिखवाने के लिये चिन्तित है, न कि उनके स्वास्थ्य के लिये।

सुधा की अनेक परिचित महिलाएँ एवं ननद रेवती अमेरिका एवं इङ्गलैंड आदि देशों में बस गयी है या यात्रा करके लौटी है। इस बात से सुधा में एक गहरी हीनता ग्रन्थि बन जाती है। वह अपने पति पर भी खीझती है और स्वयं को बदनसीब भी मानने लगती है। सुधा की एक आदत है कि वह अपनी हर परिस्थिति से किसी न किसी स्तर पर असन्तुष्ट रहती है। अन्ततः मरती भी इसी कारण से है।

निष्कर्षतः कथानक के धरातल पर यह उपन्यास भारत के सुशिक्षित वर्ग की बहुमुखी मानसिक संश्लिष्टता की सशक्त कृति है। प्रत्येक व्यक्ति प्रकट रूप से एक व्यावहारिक एवं सामाजिक भद्रता के धरातल पर जीता है, परन्तु भीतर ही भीतर वह अपने एक क्षुद्र अहं मे भी जीता रहता है। तो जब स्वयं के व्यवहार और भीतरी सच्चाई में ही ऐक्य नहीं है तो बाहर की दुनिया मे सहज जीवन कैसे जिया जा सकता है। अतः यह कृति एक स्तर पर शिक्षित वर्ग-मनोविज्ञान की कृति भी है।

लेखक ने बहुत सधी हुई और पैनी नजर से इस कृति के कथानक को उसकी सहजता और विविधता में पल्लवित होने दिया है। पात्रो के आचरण से कथानक निर्मित होता चलता है। वस्तुतः इस उपन्यास में कथा का तो महत्त्व है ही नही। महत्व तो चरित्रों की अन्तः बाह्य जिजीविषा एवं चिकीर्षा का है, उनकी चारित्रिक असंगतियों का है।

अतः उपन्यास की वास्तविकता के साक्षात्कार के लिए हमें प्रमुख चरित्रों से खुलकर बात करनी होगी। प्रोफेसर उमापति, एडवोकेट सीतापति, प्रोफेसर आनन्द, सुधा एवं विमल इस कृति के प्रमुख पात्र है। आइए इनसे मिलें।

सीतापति

सीतापति नायुडु प्रस्तुत उपन्यास के एक महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। वे एक प्रसिद्ध वकील हैं। उनके क्षेत्र में उनकी सही मुकदमा लेने और जीतने की धाक है। वे अत्यन्त बुद्धिमान ज्ञानी और परिश्रमी हैं। उनके परिवार में एक पुत्र (आनन्द) और एक पुत्री (रेवती) है। दोनों का विवाह हो चुका है। उनकी पत्नी का देहान्त हो

चुका है। अपने मित्र नारायण स्वामी का एक जमीन सम्बन्धी पेचीदा मुकदमा उन्होंने लिया और तरह-तरह से परिश्रम किया। धीरे धीरे कभी तिरुपति और कभी मद्रास अपने पुत्र आनन्द के साथ रहने लगे। नेल्लूर उनका नाता टूटता ही चला गया। वकालत भी छोड़ दी। अपने पुत्र के परिवार में दिलचस्पी लेने लगे। पुत्र-आनन्द विश्वविद्यालय में प्रवक्ता था। सीतापति बड़े स्वाभिमानी एवं चतुर थे। समय-समय पर पुत्र-पुत्रवधू और पौत्र-पौत्री को समझाया करते थे। धीरे-धीरे आनन्द का मकान बनना शुरू हुआ। वह प्रायः सीतापति की देख रेख में ही पूरा हुआ। सीतापति को मानव स्वभाव की अच्छी पहचान थी। उनका पुत्र आनन्द उन्हें अपने ऊपर भार समझता था। सुधा भी भीतर से ऐसी ही थी। सीतापति को पक्षाघात हो गया और वे देहान्त के निकट पहुँच गये। अभी आनन्द ने उपचार की चिन्ता कम की और जायदाद का वसीयतनामा पाने की अधिक उत्सुकता दिखाई। मरणासन्न सीतापति को अपने एक मात्र सुशिक्षित पुत्र के इस कृतघ्न एवं स्वार्थी स्वभाव को समझकर मन ही मन बहुत पीड़ा हुई। वे चल बसे।

सीतापति और उनके पुत्र आनन्द में एक पीढी का अन्तर बात-बात मे उभरा। सीतापति दिन-प्रतिदिन अकेले होते चले गये। वर्तमान युग के पिता-पुत्र का व्यावहारिक और वास्तविक अन्तर स्पष्ट होता चला गया। सीतापति ने पुत्र और उसके परिवार के लिए धीरे परिश्रम करके मकान बनवाया, सम्पत्ति जोड़ी और अन्ततः उनकी मृत्यु के समय उनका पुत्र वसीयतनामे पर उनके हस्ताक्षर के लिए लालायित खड़ा था।

प्रोफेसर उमापति

प्रोफेसर उमापति वयोवृद्ध हैं, निर्मल हृदय के है और अपने विषय के चोटी के विद्वान हैं। उनकी विद्वत्ता की धाक् देश-विदेश में है। वे अपने छात्रों और साथी अध्यापकों की सदा भलाई चाहते हैं। आनन्द के प्रति वे अधिक उदार हैं, फिर भी आनन्द उन पर तरह-तरह से शक करता है, भीतर ही भीतर उनसे जलता है। उनके अशुभ की सोचता है। गुप्त रूप से छात्रों मे भी उनकी निन्दा करता है। आनन्द अकारण ही सन्देह करता है कि उमापति ही उसकी पदोन्नति मे बाधक हैं। बाद मे प्रोफेसर उमापति की सदाशयता का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलने पर आनन्द में उनके प्रति कृतज्ञता का भाव जागता है और स्वयं की मूर्खता पर वह पछताता भी है।

प्रो० उमापति स्वभाव से घरेलू जिम्मेदारियों के प्रति भुलक्कड़ हैं और एक ही भूल कई बार करते हैं। परन्तु उनकी इतनी समझदार, सहनशील और निर्मल हृदय की है कि वे कभी अपने पति पर क्रुद्ध नहीं होतीं। वे सदा उनका आदर करती हैं। अपने पति की प्रतिष्ठा पर गर्व करती हैं।

आनन्द का हृदय अपने प्रोफेसर के प्रति कृतज्ञता से भरकर प्रायश्चित की

भाषा में बोल उठा, "ये लोग घर में भी मेरी रुचि, मेरी उन्नति और मेरी प्रसन्नता का ख्याल रखते हैं, जबकि मैं उनके विपरीत विद्यार्थियों की दृष्टि में उनको गिराने का प्रयत्न करता रहा। मनुष्य कितना महान् होता है। उसकी महानता दिल के भीतर ही समायी रहती है। उसे देखने और समझने की आँखें चाहिए। स्वार्थवश मनुष्य दूसरों को बुरा मानता है और बहुत जल्द दूसरों के प्रति एक धारणा बना लेता है और सब जगह उसी का प्रचार करता है।" पृ० ११२।

प्रोफेसर उमापति इस उपन्यास के सफल नायक हैं। उपन्यास में उमापति जी केवल ७वें तथा ८वें परिच्छेदों में ही विशेष रूप से प्रकट हुए हैं। उनकी भव्य एवं पांडित्यमयी छाया सभी पात्रों पर व्याप्त है। अतः सम्पूर्ण उपन्यास उनके व्यक्तित्व का परोक्ष विस्तार है। सर्वोच्चकोटि की महानता में कोई न कोई कमी रहती है। उमापति जी भी भुलक्कड़ थे, पर हृदय से परम पावन ही थे।

आनन्द

आनन्द इस उपन्यास का सर्वाधिक संश्लिष्ट एवं विकृत जीवन मूल्यों का पात्र है। वह अपने पिता सीतापति, अपने गुरु प्रो० उमापति के प्रति और स्वयं अपनी पत्नी सुधा के प्रति प्रायः जीवन भर शंकालु, ईर्ष्यालु, स्वार्थमय एवं उच्चताग्रन्थि ग्रसित रहा। अपने विद्यार्थी विमल से भी प्रायः अपना स्वार्थ ही सिद्ध करना चाहता है। वह लेक्चरर है, योग्य है, परिश्रमी भी है, परन्तु पदलोलुपता, अहंकार एवं अकारण शंकालुता उसके असहनीय अवगुण हैं। इतना होते हुए भी एक बहुत बड़ा मानवीय गुण आनन्द में यह है कि वह समझ में आने पर या स्थिति स्पष्ट हो जाने पर अपनी भूल और भ्रान्त धारणा को बदलता भी है। प्रो० उमापति और उसकी पत्नी सुधा के प्रति उसकी परिवर्तित धारणा इसके उदाहरण हैं। आनन्द को पारिवारिक सुख, गुरु-स्नेह एवं पदोन्नति आदि सब कुछ यथा समय प्राप्त हुआ। इसका अच्छा मकान भी बना। इतना होने पर भी वह हीनता ग्रन्थि और मिथ्याहंकार से प्रायः जीवन भर ऊपर न उठ सका। उपन्यास का अधिकांश आनन्द और सुधा की बौद्धिक-कलह-ग्रन्थि से ग्रसित है। सुधा आनन्द से भी अधिक हताशा में जीती है, अधिक सुखों के लिए छटपटाती है, अन्ततः आत्महत्या भी कर लेती है।

आनन्द अपनी मानसिकता में प्रायः डूबा रहता है। पति-पत्नी दोनों सुशिक्षित हैं, बच्चों वाले हैं, पर छोटी-छोटी सी बातों पर बार-बार लम्बी बहस करते हैं और एक दूसरे से अन्त में क्षमा-याचना भी करते हैं। यह सिलसिला टूटता ही नहीं है। एक बार चलते-चलते आनन्द की कार सहसा रुक गयी। उसने सुधा पर दोष लगाया, "तुम्हारे बैठने से ही गाड़ी खराब हो गयी। तुम्हारा बैठना पर्याप्त है, गाड़ी चलने का नाम नहीं लेती।" सुधा ने कहा, "दो महीने पहले एक बार गाड़ी खराब हो गयी

थी। उस वक्त तो मैं गाड़ी में न थी। खराब क्यों हुई?" आनन्द ने कहा, "तुम गाड़ी में तो न थी, पर उस दिन सवेरे मैं तुम्हारा चेहरा देखकर घर से निकला था।" सुधा—मुझे देखने से गाड़ी खराब होती है, मेरे बैठने से गाड़ी खराब होती है कल यह भी कहोगे कि मेरे छूने से भी खराब हो जाएगी।" आनन्द "नाराज क्यों होती हो, मैंने सच्ची बात कही थी।" बस बहस चल पड़ी। आनंद के पिता की आनन्द के बारे में राय देखिए—"मेरे झगड़ने का कारण यह है कि परिवार में वह अपनी शिक्षा-दीक्षा पर गर्व करता है और वह हर किसी की आलोचना किया करता है। साथ ही उसे अपनी आदतों पर नियन्त्रण नहीं। मेरा डर है कि उसकी आदतों का प्रभाव बच्चों पर न पड़े।" पृ० ९२। आनन्द के उग्र स्वभाव का एक और उदाहरण देखिए, "नहीं सुधा, तुम्हारे साथ विवाह करने के अपराध में मैं जिन्दगी भर पश्चात्ताप करता रहूँगा। चूँकि मैं धर्मभीरु हूँ और अपनी सन्तान का भविष्य अन्धकारमय नहीं बनाना चाहता हूँ, इसलिए मैं तुमको तलाक नहीं दे पाता हूँ।" ... पृ० १४४।

आनंद सुशिक्षित होकर भी मूलतः भावुक और साफ दिल का आदमी था। वह भूलें करता था, तर्क करता था, सुधा से भी झगड़ता था, अपने गुरु और पिता पर भी लांछन लगाता था, पर अंततः वह शुद्ध हृदय से अपना अपराध स्वीकार करता था, और सम्बन्धों के प्रति ईमानदार रहता था। उसमें प्रायश्चित और पश्चात्ताप के सच्चे भाव भी उभरते थे। आशय यह है कि वह सही अर्थ में मानव था—जिससे भूल तो होती है, पर वह सम्हलता है और ऊपर भी उठता है। आनन्द एक यथार्थ मानव है, आदर्श नहीं।

उपन्यास के अन्तिम दौर को देखिए—

"आठ बजे के करीब आनन्द घर लौटा। आज वह सुधा को खुशखबरी सुनाना चाहता था। इसलिए सब जगह सुधा को ढूंढ़ा। कहीं न पाकर शयन कक्ष में गया। सुधा सो रही थी। उसने जगाने की कोशिश की। मगर सुधा जागी नहीं। घबड़ाये हुए आनन्द ने थपकियाँ दे देकर जगाया। फिर भी सुधा की आँखें न खुलीं, नाड़ी देखी। उसकी घबराहट और बढ़ गयी।

आनंद के हाथ से मानों पत्र नीचे गिर पड़े। एक उसके प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति वाला पत्र था, और दूसरा इंग्लैंड-डेलीगेशन में सदस्य बनकर जाने का निमंत्रण था। यही समाचार देने को आनंद उद्विग्न था। डाक्टर ने सुधा की जाँच करके बताया कि वह चिर निद्रा की गोद में जा चुकी है। पृ० २०३।

निष्कर्षतः आनन्द अपनी भावनागत एवं व्यावहारिक अनेक न्यूनताओं के बावजूद अन्तिम रूप से निर्माणकारिणी चेतना से एक युक्त होनहार युवक है। वह

वर्तमान युग की शिक्षित युवा पीढ़ी, जो निरन्तर तर्क और अधिकार-भावना से दंशित है, पर अन्ततः जीवन की पूर्णता का अनुभव करती है, का प्रतिनिधित्व करता है और एक कदम आगे बढ़कर उसे एक निर्णायक एवं संरचनात्मक दृष्टि भी प्रदान करता है।

सुधा (आनन्द की पत्नी)

इस उपन्यास में सुशिक्षित, सौन्दर्य सम्पन्न, गुणवती और उत्तरदायित्व सम्पन्न महिला है सुधा। सुधा का आनन्द से सानन्द विवाह हुआ। धीरे-धीरे वह तीन बच्चों की माँ बनी। पति लेक्चरर से रीडर बना। बच्चे कान्वेन्ट में पढ़ने लगे। आनन्द और सुधा को एकदम आराम ही आराम था। सुधा की दिनचर्या बड़ी विचित्र है। वह सुबह सात बजे जागती है। आइने के सामने एक घंटा बिता देती। नहा धोकर कपड़े बदलती है। जलपान करके नौकरों पर हुकुम चलाती है। अपने पतिदेव को नौकर के द्वारा खाना यूनीवर्सिटी में भेज देती, आप भोजन करके सो जाती।

तीन साढ़े तीन बजे के करीब जागती है, हाथ-मुँह धोकर फिर कपड़े बदलती है। अलंकार करने में एकाध घंटा लगा देती है। नाश्ता करके पेड़-पौधों को देखने जाती है। घर के चतुर्दिक परिक्रमा करते हुए अपने ससुर से या नौकरों से झगड़ती, थोड़ी देर रेडियो सुनती है, इस बीच बच्चे आ जाते हैं, उनकी हरकतों से तंग आकर डाँटती-डपटती है। पृ० ३६-३८।

आनन्द के साथ भी सुधा का यही रूप चलता था, परन्तु वह प्रायः प्रणय-कलह में बदल जाता और दोनों एक दूसरे में डूब जाते थे। सुधा और आनन्द की बातचीत प्रायः कलह से शुरू होती थी और अन्ततः प्रणय में या समझौते में बदल जाती थी। परन्तु सुधा एक घोर महत्त्वाकांक्षिणी और स्वाभिमानिनी महिला भी थी। उसका पति के प्रति आक्रोश का एक मुख्य कारण यह था कि वह उसे अपना साहचर्य बहुत कम देता था। वह प्रायः यूनीवर्सिटी से अतिविलम्ब से लौटता और अपने पूरे विद्या अहंकार के साथ सुधा को जली-कटी सुनाता। सुधा के आत्माभिमान को चोट लगती, वह कठपुतली की तरह रोज में बैठी रहती। अतः वह व्यथित होकर कह उठती—"तुम्हारे इन कामों से मेरा कोई मतलब नहीं। मैं इतना ही कहूँगी, मेरे लिये भी थोड़ा सा समय निकालो। जब देखो, घर पर भी विद्यार्थी जमे रहते हैं, उन्हीं से बात करते हो, उन्हीं की सुनते हो, मानो हम कुछ है ही नहीं। मैं पूछती हूँ, इन सबको घर पर क्यों बुलाते हो। कल से कह दो वे घर पर न आयें।....

मैं अपना हक माँगती हूँ। मुझे भी अपने पति के साथ घूमने टहलने और बोलने का शौक होता है। मैं कोई अशिक्षित और गँवार युवती नहीं हूँ कि दिन भर रसोई के कोने में पड़ी रहूँ।" पृ० ४१।

आनन्द अपनी शोध कार्य सम्बन्धी व्यस्तता की बात करता है और सुधा को एक साधारण नारी मात्र समझने लगता है। तब वह क्रुद्ध होकर कहती है, "तुम्हारे लिये थीसिस ही सब कुछ है, पत्नी कुछ नहीं। तब शादी ही क्यों की ? किन्ही पहाड़ों में जाकर पत्थरों का अनुसन्धान करते, थीसिस लिखते रहते, दुनिया का उपकार करते। तुम्हारे लिए पत्नी बच्चों की क्या जरूरत है ?"

आनन्द अपने पक्ष में अति पर रहा और पारिवारिक पक्ष की उपेक्षा करता रहा, तो दूसरी ओर सुधा भी सरलता से स्वयं के बचे समय को किसी पारिवारिक कार्य में या स्वाध्याय में लगाकर धीरे-धीरे पति को भी समझाकर ठीक कर सकती थी। उसने एक हद तक ऐसा किया भी, पर कहीं न कहीं बात बिगड़ती ही चली गयी। आनन्द सुधा के संगीत, चित्रकला, काव्यसृजन और साहित्यज्ञान तथा बौद्धिकता से बहुत प्रभावित था और प्रशंसा भी करता था। पृ० ५१–५२।

सुधा सुयोग्य होकर भी एक भयंकर निराशावाद और वितृष्णा की छाया में जीती रही। दूसरों के सुख वैभव से उसमें एक हीनता पैदा होती रही। वह क्लब में भी जाने लगी पर भीतर से स्वयं को बदल न सकी।

"जिन्दगी में खुशी कहाँ ? मनुष्य आज रहता है कल नहीं।''''मैं जब भी अपने कमरे में जाती हूँ तो मुझे वह कमरा सूना सा लगता है। कोई अनहोना भय छा जाता है।" पृ० १७६।

"सुधा के असन्तोष का कारण यह भी था कि रेवती जैसी युवती भी अमेरिका जा सकती है और शशिभूषण जैसा गरीब और सामान्य युवक भी उच्च पद पर पहुँच सकता है और सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता है। आनन्द अपने विषय के विशेषज्ञ भी हैं, लेकिन क्या फायदा ? उन्हें वे सुविधाएँ प्राप्त नहीं होतीं, उतना वेतन भी नहीं मिलता। यह वैषम्य क्यों ?" पृ० १८१।

अन्ततः सुधा अन्य समवयस्क एवं कम योग्य महिलाओं की प्रगति एवं विदेश यात्राओं के विवरण से बहुत परेशान हो उठी। उसके सर में भयंकर दर्द होने लगा। उसने चाहा कि आनन्द लौटे तो सिनेमा जाकर कुछ मन बहला लें पर आनन्द तब तक न लौट पाया। सुधा ने नींद की अधिक गोलियाँ खा ली और इसकी इहलीला समाप्त हो गई। विधि की विडम्बना यह रही कि आनन्द सुधा को शुभ समाचार देने दौड़ता हुआ आया था कि वह प्रोफेसर बन गया है और इङ्गलैंड यात्रा का निमन्त्रण भी मिला है। परन्तु जिस सुधा को उक्त समाचारों से सबसे अधिक खुशी होती, वह तो पहले ही महायात्रा पर चली गयी।

विमल

विमल इस उपन्यास में एक शोध छात्र है। यह परिश्रमी, मेधावी एवं व्यवहार कुशल छात्र है। प्रो० उमापति, रीडर आनन्द एवं सुधा से अपने गौरवपूर्ण सम्बन्ध

बनाये रखता है। आनन्द तो इसके शोध निर्देशक हैं अतः उनकी भावना और सेवा का विमल अधिक ध्यान रखता है। आनन्द भी उसका तरह-तरह के निजी कामों में दुरुपयोग करते हैं। प्रो० उमापति की आनन्द प्रायः विमल के सामने निन्दा किया करते हैं। अपनी पदोन्नति के लिये विमल को साधन बनाते हैं। अपने भवन-निर्माण में विमल को जोते रहते हैं। विमल अवसर की तलाश में रहता है और रूस से शोध-छात्रवृत्ति मिलते ही इनको नमस्कार कर लेता है।

इस प्रकार विमल के माध्यम से वास्तव में हमारे देश के विद्यार्थी एवं निर्देशक के स्तर को प्रकट किया गया है। आज शोधार्थी अपने निर्देशक की सेवा अधिक करता है और अपना शोधकार्य कम। निर्देशक भी यही चाहता है। परिणामतः शोध का स्तर गिरता जा रहा है। डिग्री तो मिल ही जाती है। पी-एच० डी० में शत प्रतिशत शोधार्थी उत्तीर्ण होते हैं।

भाषा-शैली के स्तर पर यह उपन्यास काफी कमजोर है। लेखक के अन्य उपन्यासों में प्रायः यह कमी नहीं है। भाषा में तो मुहावरे, लिंग, वचन आदि की बहुत अधिक त्रुटियाँ हैं। लेखक ने पाडुलिपि तैयार करने में आतुरता से काम लिया है अथवा प्रूफ रीडिंग में घोर असावधानी बरती गयी है। पाठक को भाषा के स्तर पर बड़ी निराशा होती है। भाषा की-दरिद्रता के कारण सम्पूर्ण उपन्यास का स्वाद किरकिरा हो जाता है। भाषा के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

'प्रकाशक की ओर से'—शीर्षक एक पृष्ठ है।—ये वाक्य देखिये—

१. प्रो० को प्रकाशित करने के द्वारा
२. औपन्यासकारों में
३. कार्यकर्ताओं के प्रति हम साधुवाद देना चाहते हैं।

उपन्यास से—

१. किसी पहाड़ पर चले जाए पृ० २
२. धरती के पचास गज की दूरी पर पृ० २
३. लेकिन क्या हो सकता है पृ० ८
४. दम लेने फुरसत न थी पृ० ३२
५. सीतापति को अकेले मन न लगता था पृ० ३३
६. ससुर (ससुर) पृ० ३३
७. अपने समुर से खींचती गयी पृ० ३६
८. एकान्त जीवन के आदी हो गयी पृ० ३६
९. इत्यादि के गुण उसके चरित्र में थे पृ० ३७
१०. विद्रोह (विद्रोह) चोनों (दोनों) पृ० ३८
११. दिन भर दिन मुझे छोड़कर ही रहते हो पृ० ३८
१२. प्यायी (प्यारी) पृ० ४०

१३. यह मुझसे न हो सकता पृ० ४१
१४ खवे (उसे) पृ० ४१
१५ पत्नी बच्चों के क्या जरूरत है ? पृ० ४३
१६. उनके दिमाग भी खराब सा मालूम पड़ता है पृ० ४८
१७. उनके प्रत्येक पल रुपयों से तुलता था पृ० ५०
१८ आपको कुछ तात (बात) की कमी है ? पृ० ५१
१६. गाड़ियों के हार्न सुनाई देने लगे पृ० ५४
२०. यातायात टप (ठप्प) न हो पृ० ५४
२१. तुम्हारे बैठना पर्याप्त है पृ० ५५
२२. तुम्हारे चेहरा देखकर पृ० ५५
२३. गाड़ी चल (चल) पड़ी पृ० ५७
२४. मनुष्य जैसा दीखता है वैसा न होता पृ० ५६
२५. मैं बीच में उठकर चला नहीं आ सकता पृ० ६३

उपन्यास की शैली सामान्यतया तर्कपरक एवं संक्षिप्ततामूलक है। उसमें प्रखरता और प्रवाह की कमी है। पात्रों के व्यक्तित्व का एक अंग बनकर ही शैली सप्राण बनती है।

जहाँ तक उपन्यास के उद्देश्य की बात है, वह दो सुशिक्षित जोड़ों की जीवन दृष्टि में निहित है। प्रो० उमापति और उनकी साध्वी पत्नी की जीवन-दृष्टि में और रीडर आनन्द और सुधा की जीवन-दृष्टि में कितना साम्य है और कितना वैषम्य है, यह ध्यातव्य है। दो शिक्षित पीढ़ियों की जीवन-दृष्टि में जो अन्तर और वैषम्य है, उसे इस कृति में सुन्दर ढंग से प्रकट किया गया है।

विश्वविद्यालय के बड़े-बड़े पदों पर पहुँचकर भी यदि पारस्परिक ईर्ष्या, अहंकार और आडम्बर के शिकार बने रहे तो उस शैक्षिक उच्चता का क्या अर्थ निकला ?

सुधा और प्रो० उमापति की पत्नी में कितना अन्तर है ? सुधा वितृष्णा और अतृप्ति से जीवन भर उभर ही न सकी। सुशिक्षित होकर भी भीतर ही भीतर एक हताशा में जीती रही और सदा के लिये विदा भी हो गयी।

अतः स्पष्ट है कि जब तक शैक्षिक उच्चता सहज जीवन का निराकुल पर्याय नहीं बनती, तब तक इससे किसी भी प्रकार का व्यक्तिगत, पारिवारिक या सामाजिक हित न होगा।

□

वीर केसरी

(ऐतिहासिक उपन्यास)

"वीर केसरी" श्री बालशौरि रेड्डी का सन् १९७८ मे प्रकाशित ऐतिहासिक उपन्यास है। यह कुल १३ परिच्छेद एवं २२८ पेज का औत्सुक्य एवं रोमांच से ओतप्रोत उपन्यास है। इसमें आन्ध्र प्रदेश के विजयनगर साम्राज्य एवं तंजौर तथा मदुरा (तमिलनाडु) के राज्यों के शौर्यपूर्ण संघर्षों का इतिहास विद्यमान है। विजयनगर साम्राज्य के सम्राट् कृष्णदेवराय, मंत्री तिम्मरसु, सेनापति नागमनायक एवं विश्वनाथ नायक के भामंडल चरित्रों की लोमहर्षक गाथा इस कृति का प्राण-तत्त्व है। तो, दूसरी ओर पांड्य नरेश चन्द्रशेखर एवं उनकी वीराङ्गना पुत्री गौरी के संघर्षपूर्ण, जुझारू एवं संकल्पी व्यक्तित्व भी अद्वितीय हैं। यह १४वीं शती का वृत्त है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में युद्ध, कल्पना और प्रेम का तालमेल रहता है; परन्तु वास्तविक युद्ध, जिसमे अपराजेय शौर्य एवं बलिदान गर्भित होता है, ऐसी कृति का प्राण होता है। कल्पना और प्रेम तो धीरे-धीरे उक्त तत्त्व का पोषण करते चलते हैं। परन्तु ये तत्त्व कहीं भू-मूल संकल्प मे बाधा उपस्थित नही करते।

"लकुमा", "प्रकाश और परछाई" तथा "दावानल"—उपन्यासो में श्री बाल-शौरि रेड्डी ने क्रमशः कला एवं त्याग, निष्ठा एवं निःस्वार्थ सेवा तथा महाभारत जैसे पारिवारिक दावानल को उसकी पूर्ण ऐतिहासिकता मे प्रस्तुत किया है। 'वीर केसरी' में पितृभक्ति और देशभक्ति का निर्णयात्मक संघर्ष प्रस्तुत किया गया है। एक वीर युवती का अद्‌भुत शौर्य भी इस कृति की निजी विशेषता है। पिता और पुत्र का संघर्ष और अन्ततः समन्वय कृति की चरमावस्था मे सर्वथा नये प्राणों का सचार करता है। विश्वनाथ और गौरी का परिणय भी इस कृति की एक विद्युत आभा है।

यह उपन्यास वस्तुतः श्री बालशौरि रेड्डी द्वारा ही रचित है। लेखिका के रूप मे इस पर श्री रेड्डी की पत्नी सुभद्रादेवी का नाम मुद्रित है। बात करने पर श्री रेड्डी ने बताया कि यह भूल उनके प्रकाशक और उनकी खुद की है। श्री रेड्डी यह कृति अपनी पत्नी को समर्पित करना चाहते थे और प्रकाशक को यही लिखा भी था। भूल से लेखिका के रूप में पत्नी का नाम मुद्रित कर दिया गया। श्रीमती रेड्डी का तो हिन्दी का अत्यल्प ज्ञान है। उक्त भूल के और भी कारण हो सकते हैं, परन्तु यह सच है कि यह कृति श्री बालशौरि रेड्डी कृत है।

इस उपन्यास की गुणात्मकता पर सम्यक् रूप से विचार करने के लिए इसके प्रमुख कथासूत्रों की जानकारी आवश्यक है। विजयनगर साम्राज्य, पांड्य राज्य एवं चोल राज्य के मध्य सत्ता संघर्ष इस उपन्यास का आधार है। यह १४वीं शती के आसपास का वृत्त है।

तंजौरस्थ राजा ने आक्रमण करके पांड्य राज्य मदुरै को जीत लिया और वहां के राजा वीर चन्द्रशेखर को अपनी पुरुष वेश धारिणी पुत्री के साथ भाग कर विजयनगर के राजा की शरण लेनी पड़ी। राजा चन्द्रशेखर ने सम्राट् कृष्णदेव राय से प्रार्थना की कि वे उनका राज्य उन्हें वापस दिलाने में सहायता करें। चन्द्रशेखर उनके सामन्त भी थे। सम्राट् कृष्णदेव राय ने उदारतापूर्वक अपने सेनानायक नागमनायक ने युद्ध मे वीरतापूर्वक विजय प्राप्त की और तंजौर तथा मदुरै को अपने अधीन कर लिया। उसने राजा चन्द्रशेखर को पांड्य राज्य वापस न किया और स्वयं मालिक बन बैठा।

इस स्थिति और विश्वासघात से दुखी होकर पांड्य राजा चन्द्रशेखर अपनी पुरुष वेषधारिणी पुत्री (गौरी) के साथ पुनः विजय नगर सम्राट् की शरण मे गये और नागमनायक के विश्वासघात का सारा वृत्तान्त उन्हें सुनाया और पुनः सहायता करने की प्रार्थना की।

कृष्णदेव राय को उक्त वृत्तान्त सुनकर बहुत क्रोध आया। लम्बे विचार-विमर्श के बाद नागमनायक के वीर पुत्र विश्वनाथ नायक को अपने पिता से युद्ध करके और बन्दी बनाकर लाने को कहा गया। विश्वनाथ नायक ने देशभक्ति के पक्ष मे अपने विश्वासघाती पिता से युद्ध किया। चन्द्रशेखर और उनकी पुत्री ने भी युद्ध मे पूरा योग दिया।

अन्ततः विश्वनाथ ने विजय प्राप्त की और अपने पिता को बन्दी बनाकर विजय नगर सम्राट् के समक्ष उपस्थित किया।

सम्राट् ने नागमनायक की पूर्व सेवाओं का तथा विश्वनाथ की प्रार्थना का ध्यान रखकर उसे क्षमा कर दिया।

राजा चन्द्रशेखर को उनका राज्य सम्मानपूर्वक लौटा दिया गया। गौरी का परिणय विश्वनाथ के साथ हुआ। राजा चन्द्रशेखर ने प्रेमपूर्वक दहेज में अपना राज्य भी विश्वनाथ को समर्पित कर दिया।

इस प्रकार यह उपन्यास इतिहास की अनेक सनसनीखेज घटनाओ के माध्यम से शौर्य, देशभक्ति, त्याग और प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करता है।

इस उपन्यास मे तेजस्वी और निरन्तर संघर्षशील पात्रों का अपना माहौल है। सभी पात्र अपनी आकांक्षाओ, आदर्शों, निष्ठाओ और संभावनाओ मे जीते हैं। वे सभी गिर-गिर कर उठते हैं और उठ-उठ कर गिरते है, परन्तु एक संघर्ष को

निरन्तरता के साथ जीते चलते हैं। उनकी दुर्बलताओं में भी एक संगति और दीप्ति है। वे यह कहते से लगते हैं—

"गिरते हैं शहसवार ही मैदाने जंग में।
वो तिफल क्या गिरेंगे जो घुटनों के बल चलें।"

इन पात्रों में सत्ता के प्रति आग्रह है, स्वार्थ और छल भी है, पर उनके अपने तर्क भी हैं। ये पात्र अन्ततः अपनी सीमाओं और स्खलितियों को भीतर से महसूस करते हैं और पश्चात्ताप तथा प्रायश्चित भी करते हैं। उनमें दण्ड देने की कठोरता है, तो क्षमा करने की लोकोत्तर उदारता भी।

इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है—इसके पात्रों का भामंडलत्व (डाइनामिज्म)। प्रायः सभी पात्र अन्ततः एक विशुद्ध और सात्त्विक हृदय की दिव्याभा से समस्त वातावरण में एक अद्भुत चैतन्य संचरित करते हैं। सम्राट् कृष्णदेव राय, महामंत्री तिम्मरसु, नागमनायक, चन्द्रशेखर, विश्वनाथ नायक और गौरी को उनकी समग्रता में देखने पर उक्त आशय स्पष्ट हो जाता है।

वास्तव में पात्रों में ऐसा समाज मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक परिवर्तन सहज रूप से उद्भूत करना उपन्यासकार श्री बालशौरि रेड्डी की बहुत बड़ी सफलता है।

इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं—विजय नगर सम्राट कृष्णदेव राय; सेनापति नागमनायक, विश्वनाथ नायक गौरी एवं पाड्य राजा वीर चन्द्रशेखर। सम्पूर्ण कथानक में ये पाँचों पात्र अन्तःस्यूत हैं, या फिर कथानक ही इन पात्रों के चरित्र का परिणाम है। इन पात्रों से साक्षात्कार करना इस उपन्यास को उसकी पूर्णता में समझने के लिए परमावश्यक है।

सम्राट कृष्णदेव राय

१४वीं शती में आन्ध्रप्रदेश और कर्नाटक प्रान्त की सीमा पर सम्राट कृष्णदेव राय का विशाल साम्राज्य था। यह मूलतः आन्ध्रप्रदेश का ही एक भाग था। कृष्णदेव राय के शासन काल में साम्राज्य अत्यन्त समृद्ध था। कृष्णदेव राय अपने अपराजेय शौर्य, प्रशासन, कलाप्रेम एवं विद्वत्ता के लिए विख्यात थे। वे अत्यन्त न्यायशील भी थे। उनकी न्यायशीलता, उदारता, दृढ़ता और निष्पक्षता का एक प्रशस्त उदाहरण प्रस्तुत उपन्यास 'वीर केसरी' में है। पांड्य राजा चन्द्रशेखर को उनका खोया हुआ-हारा हुआ राज्य वापस दिलाया। सेना भेजकर युद्ध में अपार जन-धन की हानि सही। नागमनायक को विश्वासघात के कारण दंड घोषित किया, परन्तु बाद में उनकी महत्त्वपूर्ण और दीर्घकालीन सेवाओं का ध्यान रखकर क्षमा भी कर दिया।

राजा चन्द्रशेखर की पुत्री गौरी का विवाह सेना नायक विश्वनाथ से हुआ

और विश्वनाथ मदुरा के राजा बने, इन सभी कार्यों में सम्राट कृष्णदेव राय की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

महासेनापति नागमनायक

सम्राट कृष्णदेव राय के साम्राज्य की सुरक्षा और विस्तार में महासेनापति नागमनायक की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका थी। एक अत्यन्त निष्ठावान्, परम-पराक्रमी, व्यूह रचना-दक्ष एवं अपराजेय योद्धा और सेना संचालक के रूप में नागम-नायक का नाम था। अनेक युद्धों में उन्होंने विजय प्राप्त की थी। उन्ही के समान अद्भुत पराक्रमी और देशभक्त के रूप में विख्यात उनका यशस्वी पुत्र विश्वनाथ नायक था।

प्रस्तुत उपन्यास 'वीरकेसरी' मे भी महासेनापति नागमनायक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है, यद्यपि उसमे अनेक प्रकार के उतार चढ़ाव भी हैं। मानवीय दुर्बलता के अनेक रूप भी उभरे और अन्ततः परम शान्त दशा में वे लीन भी हो गये।

तंजौर के राजा वीर शेखर ने मदुरै—राज्य को अपने अधीन कर लिया था। मदुरै का राजा चन्द्रशेखर पराजित होकर विजय नगर-सम्राट के पास सहायता और रक्षा के लिए पहुँचा। विजय नगर-महाराजा ने उदारता पूर्वक चन्द्रशेखर को अपनाया और सेना भेजकर उसका राज्य लौटाने का आश्वासन दिया। नागमनायक को युद्ध करके मदुरै और तंजौर राज्यों पर विजय प्राप्त करने का काम सौंपा गया। जीतकर मदुरै राज्य वीर चन्द्रशेखर को लौटाने का काम भी सौंपा गया।

सेनापति नागमनायक ने अपार शौर्य और रण कौशल से दोनों राज्यो को जीता, परन्तु स्वयं ही अधिपति बन बैठा। उसने राजा चन्द्रशेखर को उसका राज्य लौटाने से साफ इन्कार कर दिया। द्रष्टव्य है—

"चन्द्रशेखर ! याद रखो, वही शासक हो सकता है जो अपने शत्रु को पराजित करने की क्षमता रखता है और अपनी प्रजा तथा राज्य की रक्षा कर सकता है। कायर के हाथ में राज्य सौंप भी दिया जाय तो वह उसे बचा नहीं सकता। इसलिए मैं समझता हूँ कि समर्थ व्यक्तियों के हाथों में ही राज्य सुरक्षित रह सकता है।........ मैं शासन सूत्र अपने अधीन रखता हूँ। आप नाम के वास्ते राजा बनकर सुख-भोगों में डूब जाइए।" पृ० ३१-३२।

"आज तक जितने भी राजा बने, वे सब अपने साहस और ताकत के बल पर ही बने हैं। आपके हाथों से वीरशेखर चोल ने राज्य छीन लिया। यदि मैं उसका संहार न करता तो यह राज्य उसी के हाथ में होता। आप तो उसका बाल भी बाँका न कर सके, यही समझ बैठे थे कि राज्य हाथो से निकल चुका है। बस, यही समझ लीजिए कि किसी ने आपकी मदद नही की है।" पृ० ३२।

ऊपर के उद्धरण से नागमनायक की घोर स्वार्थ भावना एवं सत्ता-लोलुपता प्रकट होती है। अपने सम्राट् के प्रति विश्वासघात भी प्रकट हुआ है।

अन्ततोगत्वा राजा चन्द्रशेखर की प्रार्थना पर सम्राट् कृष्णदेव राय ने नागमनायक को पराजित कर बन्दी बनाने के लिए सेना भेजा। स्वयं नागमनायक का पुत्र विश्वनाथ सेनापति बन कर युद्ध करने गया। अपने पिता को पराजित कर बन्दी बनाया। तब नागमनायक को वास्तविकता का बोध हुआ। उसमें विनम्रता और सात्विकता जागी। उसने पश्चात्ताप और प्रायश्चित भी किया। सम्राट् ने भी क्षमा दान दिया।

स्पष्ट है कि मानव से भूलें होती हैं, परन्तु वह महसूस करे और स्वयं को सुधार ले तो सर्वोत्तम है।

नागमनायक ने पराजित और बन्दी होने के बाद अपने विजयी पुत्र के प्रति जो शब्द कहे, वे शब्द उनकी अद्‌भुत शालीनता के प्रतीक हैं—"विश्वनाथ! मैं सोच रहा था कि मुझे जीतने वाला कोई वीर नहीं है। आज मेरा गर्व चूर हो गया। किन्तु मुझे इस बात का गर्व है कि मेरा पुत्र मुझसे भी बड़ा वीर है। मैं तुम्हे हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी यह वीरता तथा राजभक्ति अटल हो।" पृ० १६१।

नागमनायक के परिवर्तित हृदय की एक और छवि दर्शनीय है—पुत्र विश्वनाथ ने उन्हें मुक्त भी कराया, उसी समय वे बोले—"विश्वनाथ! आज मैं धन्य हो गया हूँ। तुमने न केवल मेरे प्राण बचाये, अपितु देश की इज्जत बचायी। तुम्हारी प्रभुभक्ति और कर्तव्यनिष्ठा प्रशंसनीय है।"

विश्वनाथ नायक

विश्वनाथ नायक इस उपन्यास का नायक है। अपनी अद्‌भुत वीरता, देश भक्ति, कर्तव्यनिष्ठा, राजभक्ति एवं निःस्वार्थ वृत्ति के कारण विश्वनाथ सर्वोपरि सिद्ध हुआ। कर्तव्य (राजभक्ति) और पितृभक्ति का अद्‌भुत संघर्ष विश्वनाथ के समक्ष था, परन्तु उसने एक क्षण के लिए भी स्वयं को विचलित नहीं किया और पूरे संकल्प के साथ अपने विद्रोही और विश्वासघाती पिता से खुला युद्ध करके उसे जीवित रूप में बन्दी बनाया और भरी राजसभा में अपराधी के रूप में प्रस्तुत किया। किन्तु इसी विश्वनाथ ने अन्ततः अपनी पितृभक्ति की भी रक्षा की। राजा से निवेदन करके अपने पिता को मुक्त भी कराया। अतः प्रभुभक्ति और पितृभक्ति में समरसता की स्थिति इस उपन्यास की एक लोकोत्तर विशेषता भी है।

उपन्यास का नामकरण 'वीर केसरी' भी अत्यन्त सार्थक है। विश्वनाथ के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति वीर केसरी बन ही नहीं सकता था।

विश्वनाथ नायक में वीरता, धैर्य, प्रभुभक्ति, कर्तव्यपरायणता और पितृभक्ति के साथ-साथ स्वाभिमान और विशुद्ध प्रेम भी पराकाष्ठा पर हैं। उक्त सभी गुणों में समन्वय भी है।

विश्वनाथ की ईमानदारी पर राजसभा में आरंभिक शंका भी की गई। परन्तु अपनी सच्ची निष्ठा से उसने शंका को निर्मल सिद्ध कर दिया और अन्ततः सबका मन मोह लिया।

गौरी विश्वनाथ से प्रतिक्षण प्रभावित होती रही। वीरता, सद्व्यवहार, सच्चरित्र और ईमानदारी आदि गुणों ने गौरी को मन्त्रमुग्ध किया। अतः स्वयं उसने ही विश्वनाथ का वरण किया।

राजा चन्द्रशेखर ने विश्वनाथ को अपनी बेटी के साथ अपने राज्य का भी मालिक घोषित किया और सभी ने उसका मुक्तकंठ से समर्थन किया।

अतः स्पष्ट है कि विश्वनाथ नायक सहज उत्कृष्ट मानवीय गुणों का एक पुंज है जिसे कालिकता कभी नष्ट नही कर सकती।

विश्वनाथ ने अपने पिता नागमनायक के विरुद्ध युद्ध करने के लिए अपने प्रस्थान से पूर्व जो संकल्पी वचन अपने सम्राट से भरी राजसभा मे कहे,

वे सदा हमारे पवित्र ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप मे सदा रहेंगे। उन वचनों से विश्वनाथ की चारित्रिक उज्ज्वलता अपनी पूर्णीमा से प्रकट होती है—

"महाप्रभु ! यह सही है कि मेरे पिता ने इस शरीर को जन्म दिया है; किन्तु इसका पोषण आपके द्वारा हुआ है। आप ही की कृपा से हमारा परिवार आज तक सुखी रहा है और हम इस स्थिति तक पहुँचे हैं। इन बात को मैं जिस दिन भूल जाऊँगा, उस दिन मुझसे बढ़कर कोई कृतघ्न न होगा।" पृ० ८२।

गौरी

प्रस्तुत उपन्यास का अत्यन्त ज्योतिष्क क्षमता-सम्पन्न नारी चरित्र है गौरी। गौरी पांड्य नरेश वीर चन्द्रशेखर की पुत्री है। चोल राजा द्वारा पराजित वीर चन्द्रशेखर की घोर असहायावस्था मे गौरी एक शक्ति सम्पन्न युवानर के समान अपार साहस, विवेक और शौर्य का अवतार बनकर उभरती है। अपने पिता की नररूप मे वह उस क्षण तक पूरी सहायता करती है, जब तक कि वे शत्रु और विश्वासघाती नागमनायक को पराजित कर पुनः अपना राज्य वापस प्राप्त नही कर लेते।

गौरी नर रूप धारण कर अपने पिता के साथ विजय नगर सम्राट् के दरबार में उपस्थित होती है। उसके पिता उसे अपनी एक मात्र सन्तान घोषित करते हैं। गौरी नर के रूप में ही अपने पिता और सेनापति विश्वनाथ नायक के सहायक के रूप में युद्ध में अपने सम्पूर्ण शौर्य का परिचय देती है और विजय प्राप्ति में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

श्री रेड्डी के सभी उपन्यासों में नारी पात्रों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही है, परन्तु ऐतिहासिक उपन्यासों मे तो इसका और भी प्रोज्ज्वल रूप प्रकट हुआ है।

गौरी के भामंडल व्यक्तित्व के समक्ष लकुमा और 'दावानल' की महिमामयी नागम्मा भी फीकी पड़ जाती हैं। गौरी का चरित्र सहसा हमें वृन्दावन लाल वर्मा की मृगनयनी और झांसी की रानी का स्मरण दिलाता है।

पराजित और हतोत्साह पिता में उत्साह का संचार करती हुई गौरी बोली—"पिता जी ! विलम्ब करने से कोई फायदा न होगा। मैं भी आपके साथ चलूंगी। मैं इस बात का ख्याल रखूंगी कि आपको कोई नष्ट न हो।""""मैं वेश बदलकर पुरुष के रूप में ही आपके साथ चलूंगी। कोई मुझे पहचान न सकेगा। आपकी सहायता भी कर सकूंगी और काम भी बन जाएगा।" पृ० ४०।

गौरी के कला, सौन्दर्य, यौवन, प्रेम और शौर्य का अद्‌भुत समन्वय था।
पृ० ५७, ५८।

अपरिचित विश्वनाथ को पहली ही बार देखकर गौरी का मन कहने लगा—"गौरी का चेहरा खिल उठा, ओह ! यह युवक कैसा सुन्दर है ? गौरी मन ही मन गुनगुना उठी। नारी सहज उसकी कोमल भावनाएँ जागृत हुई। वह अविचल देखती रह गयी।" पृ० ६२-६३। अन्ततः यह प्रणय परिणय में परिणत हुआ।

गौरी ने अपने प्राण हथेली पर रख कर नागमनायक के दरबार में जाकर दूत कार्य भी कुशलतापूर्वक किया। प्रलोभन से भी वह विचलित न हुई।

युद्ध का एक दृश्य—"दूसरे हाथ में भाला लेकर वह चन्द्रशेखर के पेट में भोंकने जा ही रहा था कि कहीं से गौरी शंकर तूफान के सदृश आ पहुँचा और भाले को उड़ा दिया।

गौरी के अपनी माँ से कहे गये वाक्य उसकी बहुमुखी योग्यता को प्रमाणित करते हैं—

" ऐसा न कहो, माँ ? पिता जी पुरुष हैं, क्या कर पाये ? मगर अब मैं समझ गयी कि हम अधिक दिनों तक दूसरों पर निर्भर नहीं रह सकते। हमें स्वयं में वह शक्ति पैदा करनी है। माँ ! विश्वनाथ जी वगैरह में यह शक्ति कैसे आ गयी ? उन लोगों ने युद्ध किया, युद्ध विद्या बड़ी लगन के साथ सीखी, उनमें साहस है, शक्ति है। देश के लिए मर मिटने का वज्र-संकल्प है उनमें। प्राणों का मोह तो है ही नहीं फिर विजय उनके कदम क्यों नहीं चूमेगी ? माँ जब हम प्राणों के मोह में पड़कर डरते हैं, तो कायर भी शेर बनकर हमारा पीछा करते हैं। वास्तव में हुआ भी यही, माँ ! तुम बुरा न मानो तो मैं कहूँगी कि एक राजा को हद से ज्यादा भोगी-विलासी नहीं बनना है। जो राजा भोग-विलास के पीछे पागल होगा, वह अपने देश की रक्षा ही क्या कर सकेगा।

चन्द्रशेखर

चन्द्रशेखर पांड्य देश के राजा थे। अपनी दुर्बलताओं के कारण वे पराजित हो जाते थे। विश्वनाथ, [illegible] एवं अपनी पुत्री के सहयोग से वे पुनः अपना

राज्य प्राप्त कर सके। उनकी भी खोई हुई वीरता जागी। चन्द्रशेखर में दुर्बलताएँ थी, पर वे अन्ततः उन पर विजय पाकर अपनी प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सके।

इस उपन्यास में वातावरण की सृष्टि विषय एवं परिस्थिति के अनुकूल होती रही है। उद्देश्य में यह कृति सफल है। उद्देश्य परिस्थितियों का सहज परिणाम है।

सबसे अधिक खटकने वाली बात है इस कृति की भाषागत अशुद्धियाँ। लिंग, वचन और वाक्य रचना सम्बन्धी त्रुटियाँ एवं शिथिलता रचना के स्वाद को किरकिरा करती है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

पृ० १ कहो, तुम्हें कैसा कष्ट हुआ ? पृ० २ चिर शेखर, पृ० ६ चबूंदर, पृ० ७ मोद, बुद्धिमत्त, पृ० ८ उसने सर खुजलाई, बू भाग, पृ० ८ सिंह,पर सवार कर रहा है, पृ० २४ मिलाने (दिलाने), पृ० ३३ सम्राट् की आज्ञाकारी सेवक, पृ० ४० थी (भी), पृ० ७४ मिट्टि (मिट्टी), पृ० ८० चौकने (चौकन्ने), पृ० ८१ सीठी (सीटी), पृ० ८३ एक सनसनी (खेज़) खबर थी, पृ० ८५ बलिक (बल्कि), पृ० १०२ तेली (तेजी) पृ० १०५ समझाती (समझती), मात्रा (मात्रा) १०७ परिचय दे चले जा रहे थे, पृ० १०८ पड़े (घोड़े), पृ० १३६ अपचार (अपराध), पृ० १४० अवद्य (अवध्य), पृ० १४२ घोड़े पर एड़ी लगाई (एड़), पृ० १८० ध्यान (म्यान), पृ० १८७ उसने भाले से चन्द्रशेखर की छाती पर घुसेड़ दिया, पृ० २०८ मोहा (मोह), पृ० २१० परीश्रम (परिश्रम)।

उल्लिखित अशुद्धियों में कतिपय प्रेस-सम्बन्धी भी हो सकती हैं। श्री रेड्डी के उपन्यासों में भाषा के स्तर पर ऐसी स्थिति नहीं है। आशा है अगले संस्करण में भूल-सुधार कर दिया जायेगा।

निष्कर्षतः 'वीरकेसरी' एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास है। पितृभक्ति और प्रभुभक्ति का निर्णयात्मक संघर्ष और अन्ततः सद्विवेकपूर्ण समन्वय इस कृति की निजी विशेषता है।

□ □

दावानल

'दावानल' प्रशस्त उपन्यासकार श्री बालशौरि रेड्डी का सन् १९७८ में प्रकाशित एक सशक्त ऐतिहासिक उपन्यास है। आन्ध्र प्रदेश के इतिहास में युद्धों का विशेष महत्त्व है। श्री रेड्डी ने अपने "लकुमा" तथा "प्रकाश और परछाईं" उपन्यासों में रेड्डी साम्राज्य एवं विजयनगर साम्राज्य के युद्धपरक इतिहास को प्रस्तुत किया है। 'दावानल' उपन्यास १२वीं शती से घटित 'पलनाडु युद्ध' पर आधारित है। इस युद्ध की भयंकरता, कुचक्रात्मकता और विराटता को अनेक इतिहासकारों ने 'महाभारत' के समान माना है और अनेक घटनाओं और व्यक्तियों से महाभारत से तुलना भी की है।

इस उपन्यास के विभिन्न पक्षों पर विचार करने से पूर्व उपन्यासकार श्री रेड्डी के भूमिका सम्बन्धी वक्तव्य को ध्यान में रखना आवश्यक है। वह इस प्रकार है—

"यह युद्ध पलनाडु के राजाओं के भाइयों के बीच हुआ था। इसकी तुलना महाभारत युद्ध से की जाती है। दायादों के बीच राज्य के विभाजन को लेकर यह संग्राम हुआ था। राजा नलगाम को दुर्योधन माना जाता है, जब कि मल्लिदेव आदि राजाओं को पांडव तथा ब्रह्मनायडु को श्रीकृष्ण। महाभारत में जहाँ जुए में हारकर पांडव अपना राज्य खो बैठते हैं, वहाँ मल्लिदेव राजा वगैरह कुक्कुट-युद्ध में पराजित होकर। परन्तु इन दोनों जुओं में धोखा दिया गया था। पांडवों ने जहाँ १२ वर्ष तक वनवास किया, वहाँ मल्लिदेव आदि ने सात वर्ष तक। श्रीकृष्ण ने महाभारत में दूतकार्य किया, परन्तु पलनाडु में अलराजु ने। कुरुक्षेत्र की भाँति कारमपूडि रणक्षेत्र भी सामरिक दृष्टि से उतना ही महत्वपूर्ण है।

महाभारत युद्ध में कौरवों ने सिंह सम पराक्रमी अभिमन्यु का समस्त वीरों ने मिलकर अन्यायपूर्वक वध किया था। उसी प्रकार पलनाडु के युद्ध में बालचन्द्र के साथ यही अधर्म युद्ध हुआ था।

अलावा इसके बारहवीं शती में आन्ध्र में शैव तथा वैष्णव सम्प्रदायों के बीच संघर्ष था। ब्रह्मनायडु वैष्णव भक्त थे, जब कि नागम्मा शैव सम्प्रदाय की अनुगामिनी थी। ब्रह्मनायडु वैष्णव मत के अनुयायी होते हुए भी धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त उदार प्रकृति के थे।...."

पलनाडु के इस युद्ध ने आन्ध्र के कवि, नाटककार, लेखक एवं इतिहासकारों पर ऐसा प्रभाव डाला कि इसे इतिवृत्त बनाकर दर्जनों काव्य, नाटक, उपन्यास, वीरगीत, गद्यकाव्य, गीतिकाव्य तथा फिल्में भी बनाई गईं। आज से ३०० वर्ष पूर्व

कवि सार्वभौम श्रीनाथ ने शिपद छन्द में महाकाव्य का रूप दिया था। ई० सन् १८६२ में वीरभद्र कवि ने 'वीर भागवत' नाम से महाकाव्य ही प्रस्तुत किया।

बाल नागम्मा तथा ब्रह्मनायडु के राजनीति के दाँवपेंच देखते ही बनते हैं। यद्यपि यह संग्राम आन्ध्र में घटित हुआ था, तथापि इसमें सार्वदेशिकता की झलक मिलती है।''

यह उपन्यास कुल १० परिच्छेदो और १६४ पृष्ठों मे व्याप्त है। श्री रेड्डी का यह ग्यारहवाँ उपन्यास है।

इस उपन्यास का कथावृत्त संक्षेप में इस प्रकार है—

अनुगुराजा अपने पूर्वजों के अन्याय और शोषण-पूर्ण राजकृत्यों के प्रायश्चित्त के लिए विभिन्न तीर्थों के स्नानादि करने के लिए एक साधारण व्यक्ति के रूप में निकल पड़े। एक दिन ब्राह्म मुहूर्त में वे कृष्णनदी के अमरावती घाट पर स्नान कर रहे थे कि उनकी भेंट सादा वेष धारी चन्दबोलु के शासक कुलोत्तुंग चोड़ से हुई। पारस्परिक परिचय रहस्यात्मक ढंग से हुआ। पूरी जानकारी प्राप्त पर कुलोत्तुंग ने अनुगु को गुरुजाला प्रदेश दहेज में दिया और अपनी पुत्री मैलम देवी से उसका विवाह भी कर दिया।

आरम्भ में मैलम देवी सन्तानहीन थी, बाद मे गर्भवती हुई और पुत्र नलगाम राजा का जन्म हुआ। परन्तु इससे पहले ही सन्तान के अभाव में मन्त्री दोड्ड नायडु का पुत्र बादन्ना दत्तक पुत्र बना। बादन्ना का दूसरा नाम पेद्द नायडु था। पेद्द नायडु की पत्नी मुक्तालबांबा थी। बादन्ना के ससुर ने बादन्ना का घुड़सवारी द्वारा वध कराना चाहा क्योंकि उसे पता चला कि बादन्ना क्षत्रिय नहीं है। धोखा देकर उसकी पुत्री से विवाह किया है। बादन्ना बच गया। मन्त्री दोड्ड नायडु का दूसरा पुत्र ब्रह्मनायडु था। उसकी पत्नी का नाम ऐतांम्बा था। ब्रह्मनायडु का पुत्र बालचन्द्र था। यह अद्भुत पराक्रमी और वीर था। ब्रह्मनायडु के तीन भाई थे— सुरिनीडु, पेरिनीडु और मल्लिनीडु।

अनुगु राजा की तीन पत्नियाँ थी—मैलम देवी, विद्या देवी और भूरमा देवी। इन तीनो की सन्तानों का विवरण यह है—

मैलम देवी	विद्या देवी	भूरमा देवी
↓	↓	↓
सन्तानें—नलगाम राजा	पेद्दमल्ल देव	कामराज
	वालि मल्लदेव	नरसिंग राव
	पिन्न मल्लदेव	

इस बीच एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग और है। पलनाडु गुरुजाला राज्य के अधीन एक छोटा सा मण्डल था। उसमे एक किसान रामय्या था। रामय्या सन्तानहीन

था। उसकी पत्नी सीता लक्ष्मी सन्तान के बिना बहुत दुःखी रहती थी। एक दिन जंगल में रामय्या को एक नवजात कन्या मिली, उसके पास एक रत्नों की पोटली भी रखी थी। कन्या बहुत सुन्दर थी। रामय्या ने बड़ी खुशी से उसे उठा लिया और अपनी पत्नी को सौंपते हुए कहा, ईश्वर ने हमारी प्रार्थना सुन ली है। इसको अपनी ही सन्तान समझ कर पालो। सीता लक्ष्मी ने अति स्नेह पूर्वक उसे पाला और बड़ा किया। उस कन्या का नाम था नागम्मा। यही नागम्मा आगे चलकर अनेक रूपों में विकसित हुई और पलनाडु युद्ध का कारण भी बनी।

नागम्मा का विवाह हुआ, परन्तु वह विधवा हो गयी। उसने धीरे-धीरे अनेक गुण प्राप्त किये, सामाजिक कार्य किये। वह बहुत लोकप्रिय हुई। राजा के मन में नागम्मा के प्रति आदर भाव जागा और उसे राज सम्मान भी दिया। मन्त्री दोड्डु नायडु और नागम्मा में वैमनस्य बढ़ता ही गया।

मन्त्री दोड्डुनायडु ने अनुगुराजा की हत्या करा दी और सहज मृत्यु का प्रचार कर दिया। बाद में ज्येष्ठ महिषी-पुत्र नलगाम का राज्याभिषेक करा दिया।

कुछ समय बाद मन्त्री दोड्डुनायडु की मृत्यु हो गई और उसके पुत्र ब्रह्मनायडु को मन्त्री बनाया गया।

राजा नलगाम एक दिन शिकार खेलने गये। दूर जंगल में भटक कर थक गये और परेशान हो गये। तभी नागम्मा द्वारा जंगल में उनका भव्य स्वागत सत्कार हुआ। धीरे-धीरे राजा नलगाम पर नागम्मा का गहरा प्रभाव पड़ता गया। नागम्मा राजकाज में भी महत्त्वपूर्ण सलाह देने लगी। मन्त्री ब्रह्मनायडु पर राजा का अविश्वास बढ़ने लगा। मन्त्री ब्रह्मनायडु और सेनापति कन्नमदास नागम्मा की प्रसिद्धि से जल उठे।

मंत्री ब्रह्मनायडु राजा के सौतेले भाइयों के साथ मिलकर गुप्त मंत्रणा करता है। राजा की हत्या कराना चाहता है। नागम्मा ने इस रहस्य का उद्‌घाटन किया। राजा ने ब्रह्मनायडु को राजद्रोही घोषित किया। ब्रह्मनायडु अपने मित्रों सहित गुरजाला छोड़कर माचर्ला में बस गया।

राजा नलगाम ने अपनी दूसरी सौतेली माँ के पुत्र नरसिंग राजा को सेनापति बनाया।

ब्रह्मनायडु ने राज्य का बँटवारा चाहा। राजा मल्लिदेव (मझली माँ का पुत्र) राजा घोषित हुआ और कन्नम दास सेनापति।

राज्य के बटवारे का प्रस्ताव ब्रह्मनायडु की ओर से आया। नागम्मा ने महापर्व संक्रान्ति की बात करके बटवारे के प्रस्ताव को टाला। उसने कहा राज्य-विभाजन उचित नहीं। युद्ध में भी असंख्य हत्याएँ होंगी। इसलिए हम प्रसिद्ध कुक्कुट युद्ध के द्वारा अपनी हार जीत का निर्णय करें तो श्रेयस्कर होगा। इस कुक्कुट युद्ध की शर्त यही है कि जिस पक्ष के कुक्कुट हार जायेंगे, उस पक्ष के सभी लोग समस्त राज्य

और वैभव त्याग कर सात वर्ष का वनवास भोगेंगे। आप इस युद्ध को स्वीकार कर लें तो श्रेयस्कर होगा।

कुक्कुट युद्ध हुआ। अन्ततः छलपूर्वक नागम्मा ने ब्रह्मनायडु के पक्ष को पराजित करा दिया। ब्रह्मनायडु मल्लिदेव आदि को लेकर सात वर्ष के वनवास के लिए चला गया।

इस घटना पर ब्रह्मनायडु एवं नागम्मा की प्रतिक्रिया घ्यातव्य है—

"ब्रह्मनायडु का दल चकित रह गया। उन्हें नागम्मा के धोखे का पता चला। फिर भी ब्रह्मनायडु ने सोचा कि उस हालत में विवाद खड़ा करना पौरुष हीनता है। उसने अपनी पराजय को स्वीकार किया, मल्लिदेव आदि को साथ ले प्रवास के लिये चल पड़ा।

गुरजाला की प्रजा ने सहानुभूतिपूर्ण दो चार अश्रुबिन्दु गिराये, पर नागम्मा ने निश्चिन्तता की गहरी सांस ली।" पृ० ७१। यहाँ तक उपन्यास के पाँच परिच्छेद पूरे हुए और एक प्रकार से पूर्वार्द्ध भी पूरा हुआ।

नागम्मा की प्रतिशोध-भावना ब्रह्मनायडु आदि को वनवास देने के बाद भी शान्त न हुई। उसने माचर्ला की प्रजा की धन-सम्पत्ति आक्रमण करके लूट ली। वनवासकाल में भी ब्रह्मनायडु आदि को तरह-तरह के कष्ट दिये। वनवास के सात वर्ष पूरे होने पर ब्रह्मनायडु ने अलराजू को नलगाम राजा के पास भेजा और राज्य लौटाने का प्रस्ताव भी भेजा। अलराजू राजा नलगाम का दामाद था। राजा नलगाम की एकमात्र पुत्री पेरम्मा का पति था। प्रस्ताव टाल दिया गया और नागम्मा ने विषाक्त पुष्पमाला द्वारा अलराजू की हत्या करा दी। अलराजू की पत्नी सती हो गई।

मल्लिदेव के पुत्र बाल मल्लिदेव का राज्याभिषेक हुआ। ब्रह्मनाण्डु के पुत्र बालचन्द को मंत्री पद दिया गया। दूतवार्ता असफल हुई। नागम्मा का सन्धि का प्रयत्न। वह माचर्ला लौटाने को तैयार हो गई। सन्धि हुई, प्रीतिभोज हुआ। परन्तु बालचन्द्र के मित्र अनुपोतु (ब्राह्मण) ने आत्महत्या कर ली। बालचन्द्र इससे भड़क उठा। अन्ततः युद्ध के लिये सभी तैयार हो गये। युद्ध प्रारम्भ हो गया। बालचन्द्र ने लोकोत्तर पराक्रम दिखाया। नरसिंग राजा की मृत्यु हुई। असंख्य सैनिक हताहत हुए। अंततः बालचन्द्र की मृत्यु हो गई। नागम्मा ने सैन्य संचालन किया। युद्ध की आकांक्षा की। अन्ततः वन्दिनी बनी। क्षमा-याचना की और संन्यास लेकर चली गयी।

नलगाम राजा ने विवश होकर सन्धि का सफेद ध्वज फहराया और ब्रह्मनायडु की अधीनता भी स्वीकार की। क्षमा-याचना की और संन्यास लेने की प्रबल इच्छा भी प्रकट की।

'ब्रह्मनायडु ने उदारतापूर्वक नलगाम राजा को समझाया और उनका पुनः राज्याभिषेक किया।

ब्रह्मनायडु स्वयं संन्यासी होकर चले गये।

स्वार्थ, अहंकार, भोग, लिप्सा और यशोलिप्सा की प्रवृत्ति मानव के सामान्य जीवन को भी नाटकीय बना देती है। रामायण और महाभारत की घटनाएँ भी इसी सत्य की ओर इंगित करती है।

राजा नलगाम युद्ध के अन्तिम क्षणो में युद्ध से प्राप्त परिणाम पर तटस्थ भाव से सोचता है—उसका सारा नशा उतर चुका है। *"सम्पूर्ण विनाश के पश्चात् राजा नलगाम पर से नागम्मा का नशा जाता रहा। उसे सारा विश्व शून्य सा प्रतीत होने लगा। उसकी एकमात्र पुत्री अकाल मृत्यु को प्राप्त हुई। पुत्री के शोक मे उसकी पत्नी ने भी अपनी लीला समाप्त की। उसके सारे सौतेले भाई युद्ध की ज्वाला को आहुति हुए। अब अपना कहने वाला कोई न था। इस महाप्रलय का कारण क्या है? वह कौन सा सुख भोगने वाला है? सारा पलनाडु श्मशान बन गया।"*

यों तो इस उपन्यास में अनेक महत्त्वपूर्ण छोटे-बड़े पात्र है, परन्तु जिनके कारण सारे पात्र और घटनाएँ चरितार्थ होते हैं और उपन्यास एक भयंकर अन्त पर पहुँचता है, वे पात्र केवल तीन हैं ब्रह्मनायडु, नागम्मा और बालचन्द्र। अतः इन तीन पात्रो पर विचार करना अपेक्षित है। दोनो पक्षों के राजा इन पात्रों के संकेत-वाहक मात्र होकर रह जाते हैं।

ब्रह्मनायडु

अनुगुराजा गुरुजाला राज्य के नृपति थे। दोड्डुनायडु उनके मंत्री थे। अनुगुराजा आरम्भ में सन्तानहीन थे अतः मंत्री दोड्डुनायडु के ज्येष्ठ पुत्र बादन्ना नायडु को दत्तक पुत्र के रूप मे रख लिया था। ब्रह्मनायडु बादन्ना नायडु के लघु भ्राता थे। ब्रह्मनायडु बुद्धिमान्, पराक्रमी, ईमानदार एवं न्यायशील थे। इनकी योग्य पत्नी का नाम एताम्बा था। इनके एक मात्र पुत्र का नाम था बालचन्द्र। बालचन्द्र की 'दावानल' उपन्यास में वही भूमिका है जो महाभारत मे अभिमन्यु की थी। दोड्डुनायडु की मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मनायडु गुरुजाला राज्य के मंत्री बने। इससे पूर्व दोड्डुनायडु ने अनुगु राजा की ईर्ष्यावश हत्या करा दी थी। इसका प्रमुख कारण राजा का नागम्मा के प्रति विश्वास और आदर भाव था। इसे दोड्डुनायडु न सह सके थे। नागम्मा ने धीरे-धीरे पर्याप्त राज सम्मान प्राप्त किया और ब्रह्मनायडु को यह सहज ही असहनीय हो गया। ब्रह्मनायडु और सेनापति कन्नमदास नागम्मा की प्रसिद्धि से तिलमिला उठे, जल उठे। ब्रह्मनायडु के षड्यन्त्र का रहस्य नागम्मा ने राजा नलगाम को बताया। ब्रह्मनायडु राजा के सौतेले भाइयो के साथ गुप्त मंत्रणा करके राजा की हत्या करना चाहता है। राजा नलगाम ने ब्रह्मनायडु को राजद्रोही घोषित किया। ब्रह्मनायडु अपने घनिष्ठ मित्रों को साथ लेकर माचर्ला मे जा बसा। ब्रह्मनायडु ने राज्य का विभाजन चाहा और प्रस्ताव भी भिजवाया। प्रस्ताव को अस्वीकृत कर कुक्कुट युद्ध द्वारा जय-पराजय

को स्वीकार किया गया। ब्रह्मनायडु के साथ छल किया गया और कुक्कुट युद्ध में उसके पक्ष की पराजय हुई। कपट को जानकर भी वह धैर्यपूर्वक सबके साथ सात वर्षीय वनवास के लिए चला गया।

वनवास से लौटने पर भी जब राज्य न लौटाया गया तो भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में अन्ततः ब्रह्मनायडु के पक्ष की विजय हुई। राजा नलगाम ने शरण ली और नागम्मा ने भी। पर इस विजय में ब्रह्मनायडु के सुयोग्य पुत्र बालचन्द्र के षड्यन्त्रपूर्वक वध किया गया था।

अन्ततः ब्रह्मनायडु ने नागम्मा को क्षमा किया और राजा नलगाम को पुनः राजा बना दिया।

ब्रह्मनायडु के हृदय पर इस सम्पूर्ण पलनाडु युद्ध का और उसके कारणों का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि वे स्वयं संन्यास लेकर जंगलों में आत्मशुद्धि के लिये चले गये।

ब्रह्मनायडु का चरित्र अपनी आरम्भिक दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करता हुआ और श्रेष्ठ मानवीय गुणों की ओर बढ़ता हुआ एक विकासशील एवं उदात्तीकृत चरित्र है। वीरता, सहिष्णुता और त्याग का अनुपम समन्वय इस भामण्डल चरित्र में है।

नागम्मा

रामय्या नामक कृषक सन्तानहीन था। उसकी पत्नी सीता लक्ष्मी सन्तान के अभाव में बहुत दुखी थी। एक दिन सहसा रामय्या ने जंगल में एक शिशु को रोते हुए और एक नाग की छत्रछाया में देखा। रामय्या ने आँखें बन्द कर भगवान से प्रार्थना की। कुछ देर बाद नाग चुपचाप चला गया। रामय्या ने देखा शिशु एक सुन्दर कन्या है और उसके पास ही एक रत्नों की पोटली भी रखी है। रामय्या ने अत्यन्त हर्ष विभोर होकर कन्या को उठा लिया। घर जाकर अपनी पत्नी से कहा, भगवान ने हमें सन्तान दी है और लक्ष्मी भी। पत्नी ने बड़े स्नेह से उस कन्या को स्वीकार किया।

यही कन्या नागम्मा है। रामय्या ने अत्यन्त स्नेहपूर्वक इस कन्या का लालन-पालन किया। "जिस दिन से उस शिशु का घर में प्रवेश हुआ, उस दिन से रामय्या की सम्पत्ति बड़ी तेजी के साथ बढ़ने लगी। नागम्मा गाँव भर के लोगों की आँखों का तारा थी। सभी यही कहा करते थे कि रामय्या के घर नागम्मा आयी, साक्षात् लक्ष्मी ही आ गयी है।" पृ० ३६।

"रामय्या ने नागम्मा की शिक्षा-दीक्षा का उचित प्रबन्ध किया। वह इतनी तेजी के साथ शिक्षा ग्रहण करती गयी कि उसकी असाधारण मेधा पर स्वयं उसके शिक्षक चकित थे।

साहित्य के साथ उसे राजनीति और अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा भी दी गयी।" पृ० ३८।

नागम्मा का धूमधाम से विवाह हुआ, परन्तु वह शीघ्र ही विधवा हो गयी। नागम्मा का विश्वास था कि मानव का जीवन महत्त्वपूर्ण है। जीवन को ऐसे कार्य में लगाना चाहिए जिससे समाज और देश का कल्याण हो। नागम्मा ने सर्वप्रथम अपने गाँव में अनेक प्रकार के सुधार किये। ग्रामवासियों में संगठन पैदा किया, उन्हें आत्म-रक्षा के लिए आवश्यक रूप से प्रशिक्षित किया। नागम्मा का अपने पूरे इलाके के नर-नारियों पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे उसे अपना नेता ही मानने लगे।

नागम्मा के शौर्य, साहस, विवेक और सेनाभाव का समाचार राजा नलगाम तक पहुँचा। राजा ने नागम्मा को सम्मानपूर्वक अपने दरबार में बुलाया। एक बार शिकार के समय भी नागम्मा ने घने जंगल में राजा के सम्मान और विश्राम की व्यवस्था की थी। इसका प्रभाव भी राजा पर था ही।

नागम्मा ने ब्रह्मनायडु (मंत्री) की दुरभि सन्धि और कपट भावना से राजा नलगाम को सावधान किया। राजा के सौतेले भाइयों को मंत्री ने भड़काया था और नलगाम राजा की हत्या कराना चाहता था।

नागम्मा की सलाह पर राजा नलगाम ने ब्रह्मनायडु को राजद्रोही घोषित किया। ब्रह्मनायडु तुरन्त अपने मित्रों सहित माचर्ला में बस गया।

अब नागम्मा के हाथ में राज्य का पूरा शासन आ गया। राजा भी उस पर पूर्ण विश्वास करके निश्चिन्त रहने लगे। कुक्कुट-युद्ध में भी अपने राजा को विजय प्राप्त कराके ब्रह्मनायडु और उसके सभी साथियों को सात वर्ष का वनवास दिलाया। नागम्मा ने इसमें कूटनीति से काम लिया था।

वनवास-काल पूरा होने पर दोनों पक्षों में भयंकर युद्ध हुआ। अन्ततः राजा नलगाम और नागम्मा की पराजय हुई। नागम्मा क्षमा याचनापूर्वक संन्यास लेकर चली गयी।

निष्कर्षतः नागम्मा का चरित्र अत्यन्त विकासशील रहा। उसने सदा सबका हित किया, राजनीति के चक्कर में आने पर स्वार्थ और अहंकार ने उसे घेर लिया। उसने नैतिक एवं न्यायिक स्तर पर अनेक अपराध किये। परन्तु वह अन्ततः वीरांगना है, स्वाभिमानिनी है और स्वयं की भूलों पर पछताती भी है।

नागम्मा के ये वाक्य उसके शौर्य और स्वाभिमान के ज्वलन्त उदाहरण हैं—

"महामंत्री ! आप युद्धभूमि में भावुकता को स्थान दे रहे हैं। यहां पर वीरता का प्रदर्शन करना है। अब विलम्ब न कीजिये। आपके साथ युद्ध करते हुए मैं मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँगी, तो मुझे वीर स्वर्ग मिलेगा। यदि आपको पराजित कर सकूँ तो इतिहास में मेरा नाम शाश्वत् रूप से बना रहेगा। इसलिए दोनों दृष्टियों से मेरा हित ही होगा।" पृ० १६०।

निष्कर्षतः कथानक, चरित्र-चित्रण एवं उद्देश्य के सुन्दर निर्वाह में यह उपन्यास सफल है। प्रायः हमारे जीवन की भूलें हमें अन्ततः स्वयं पर सोचने और सम्हलने पर विवश करती हैं। □ □

11.017

लेखक-परिचय

डा०

जन्म : १५-१२-१९२५ [उत्तर प्रदेश, आसो]

शिक्षा : एम० ए० [हिन्दी, संस्कृत], शास्त्री, पी० एच० डी०, डी० लिट्० ।

- अध्यापन : गत ३५ वर्षों में बी० ए० तथा एम० ए० एवं शोध कार्यों को पढ़ाया या निर्देशित किया ।
- निर्देशन : ३५ शोधार्थियों ने आपके निर्देशन में पी० एच० डो० उपाधि प्राप्त को ।
  गत ३० वर्षों से दक्षिण भारत में-हिन्दो सेवा में रत द० भा० हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास केस्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध सस्थान के प्रो० एवं अध्यक्ष पद से सेवा निवृत्त (१५-१२-१९८५) ।
- सम्प्रति : विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, दिल्ली से स्वीकृत वृहत् शोध परियोजना में एकाकी एवं प्रमुख शोधक [मद्रास विश्वविद्यालय से सम्बद्ध]

प्रकाशित प्रमुख रचनाएं

- कविवर बनारसी दास —शोध प्रबन्ध
- तप्त लहर —स्व काव्य संकलन
- उपन्यास सिद्धान्त और संरचना —समीक्षा
- बिहारी —समीक्षा
- जनमानस —स्व काव्य संकलन
- साहित्यिक अनुसन्धान के आयाम —शोध
- साहित्यालोचन के सिद्धान्त —समीक्षा
- साक्षात्कार —स्व काव्य संकलन

□□□